वर्ष :4 अंक :4 अक्टूबर-दिसम्बर 2014 मूल्य : 25 रुपये

हिन्दी काव्य की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

पारस परस

सृजन-स्मरण

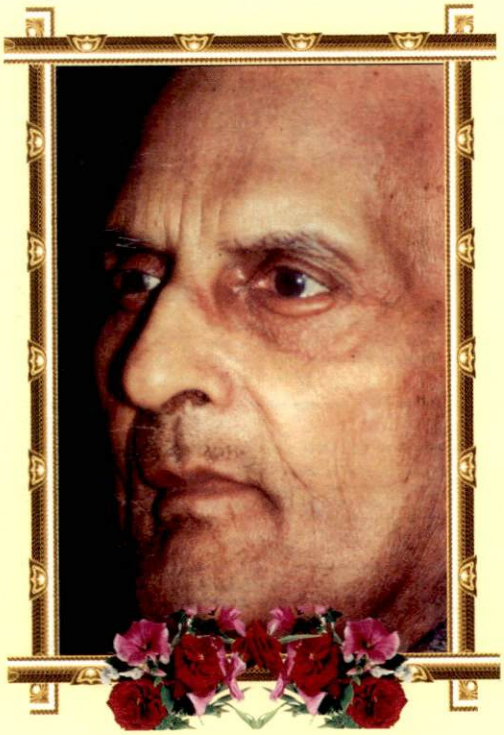

राम विलास शर्मा

(जन्म : 10 अक्टूबर, 1912 ; निधन : 30 मई, 2000)

दुख की प्रत्येक अनुभूति में
बोध करता हूँ कहीं आत्मा है
मूल से सिहरती प्रगाढ़ अनुभूति में
आत्मा की ज्योति में
शून्य है न जाने कहाँ छिपा हुआ
गहन से गहनतर
दुख की सतत अनुभूति में
बोध करता हूँ एक महत्तर आत्मा है
निबिड़ता शून्य की विकास पाती उसी भांति,–
सक्रिय अनंत जलराशि से
कटते हों कूल ज्यों समुद्र के
एक दिन गहनतम इसी अनुभूति में
महत्तम आत्मा की ज्योति यह
विकसित हो पाएगी घिर परिणति महाशून्य में।

– राम विलास शर्मा

वर्ष : 4, समग्रांक : 15, अक्टूबर–दिसम्बर, 2014 रजि. नं. यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस-परस

हिन्दी काव्य की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

अनुक्रमणिका

संरक्षक मंडल

अभिमन्यु कुमार पाठक

अरुण कुमार पाठक

बी. एल. गौड़

पंडित सुरेश नीरव

डॉ. अशोक मधुप

संपादक

शिवकुमार बिलगरामी

संपादकीय कार्यालय

418, मीडिया टाइम्स अपार्टमेंट

अभयखण्ड–चार, इंदिरापुरम

गाजियाबाद – 201012

मो. : 09868850099

08527762055

लेआउट एवं टाइपसेटिंगः

आइडियल ग्राफिक्स

मो. : 8802724123

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक एवं प्रकाशक द्वारा पारस–बेला न्यास के लिए डा॰ एल॰ पी॰ पाण्डेय द्वारा प्रकाश पैकेजर्स, 257, गोलागंज, लखनऊ तथा आप्शन प्रिन्टोफास्ट, पटपड़गंज इन्ड. एरिया, नई दिल्ली से मुद्रित एवं ए–1/15 रश्मिखण्ड, शारदा नगर योजना, लखनऊ, उत्तर प्रदेश से प्रकाशित

पारस–परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है । पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

पाठकों की पाती		2
संपादकीय		3
श्रद्धा सुमन		
आखिर फिर ऐसा वादा क्यूँ	डा॰ अनिल कुमार पाठक	4
कालजयी		
स्वर्गीय श्री शास्त्रीजी के प्रति	पं॰ पारसनाथ पाठक 'प्रसून'	5
विप्लव गान	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	6
कवि	राम विलास शर्मा	7
दीवारें	विजयदेव नारायण साही	8
ठंडी–ठंडी हवा	डॉ जगदीश चन्द्र 'जौहर'	9–10
साक्षात्कार	बालस्वरूप राही	11–14
समय के सारथी		
वह अनजान आदमी	अभिमन्यु अनत	15
ऊँचाई है कि....	लीलाधर जगूड़ी	16
लापता यक्षिणी की ख़बर पढ़ते हुए...	प्रताप सिंह	17
हे महामनुज !	ब्रजराज सिंह तोमर	18
हिन्दी अधिकारी	बुद्धिनाथ मिश्र	19
गीले रंग हुए यादों के	गोविन्द गुलशन	20
गीत की सृष्टि	कृष्ण प्रताप सिंह 'सुमन'	21
गीत अपनी जिन्दगी	विजय प्रसाद त्रिपाठी	22
ये फैसले का वक्त	आनंद क्रांतिवर्धन	23
गुलों की जिंदगी का सार....	ब्रह्मदेव शर्मा	24
देती है ऊंचाई मां	अजय 'अज्ञात'	25
नारी–स्वर		
खुशनुमा कविता	पुष्पा राही	26
ओ मेरे दर्द !	प्रतिमा श्रीवास्तव	27
क्षुधा	डॉ॰ शुभश्री पाणिग्रही	28
तुम्हारे आने से	कविता अरोड़ा	29
रंजना पोहनकर की कविताएं	रंजना पोहनकर	30
कोई मिल जाए ऐसा	रूपाश्री शर्मा	31
पहाड़ तुम्हें बुलाता है	मीना पाण्डेय	32
मन का प्रतिशोध	डॉ0 सीमा गुप्ता (शारदा)	32
नवोदित रचनाकार		
मनवाँछित मंजिल पाना है	कौशलेन्द्र सिंह ''राष्ट्रवर''	33
धरती का लाल	उदय शरण	34–35
धूल भी एक पदार्थ है	रणविजय राव	36
कैसे कहूँ मन करता है !	सुधीर सिंह 'सुधाकर'	37
जानवर	विजय कुमार	38
खुद को संभाल पहले	प्राणनाथ प्रभाकर 'प्राण'	38
इन्सान तो बनो	डॉ॰ उमाशंकर ''राही''	39
अंत में		
मैं तुम्हारी ही कृपा से....	शिवकुमार बिलगरामी	40

पाठकों की पाती

सेवा में,

माननीय संपादक महोदय

पारस परस, लखनऊ,

महोदय, मुझे माननीय किसी के यशस्वी कर कमलों द्वारा कुछ पत्रिकायें पढ़ने को मिली। उसमें पारस-परस (जुलाई-सितम्बर 2014) भी रही। पारस-परस को बड़े चाव से पढ़ा। संपादकीय ज्ञानवर्धक लगा। डा॰ अनिल कुमार पाठक जी की कविता 'पिता जी' मन के कोने में चुपचाप खड़ी मिली। 'प्रसून' जी का 'आदमी' आदमी को आदमियत उजागर करती मिली। भारतेन्दु, भगवती चरण वर्मा, डॉ राम कुमार वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान की कालजयी रचनाओं ने मन को मोह लिया। पंडित सुरेश नीरव का साक्षात्कार मन को भाया। रामदरश मिश्र, 'अम्बर', राही, विराट, बाजपेयी एवं अन्य की रचनायें मनभावन हैं। नारी स्वर में डा॰ मधु चतुर्वेदी, डॉ॰ तारा गुप्ता, सुलोचना वर्मा, डॉ॰ मंजु शर्मा महापात्र, ऋतु गोयल, संगीता शर्मा की रचनायें समय का सही रेंखांकन करती मिली। नवोदित कवियों की रचनायें भी मुझसे अच्छी हैं। ...और अंत में सेर पर सवा सेर आपकी रचना मन को भायी।

प्रेमचन्द्र शुक्ल 206, **न्यू लाहौर कालोनी**
शास्त्री नगर (गीता कालोनी) दिल्ली-110031

रचनाकार अपनी रचनाएं और प्रतिक्रियाएं कृपया निम्नलिखित पते पर भेजें–

संपादक : पारस–परस

418, मीडिया टाइम्स अपार्टमेंट
अभय खण्ड–चार, इंदिरापुरम
गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)

e-mail
paarasparas.lucknow@gmail.com
shivkumarbilgrami99@gmail.com

संपादकीय

क्या तुम्हें भी भा रहा है, विश्व का यह भाव खंडन
भूख से व्याकुल तड़पते, बालकों का क्षुब्ध क्रंदन
यदि नहीं तो आज फिर से, क्रांति का सरगम बजा दे
प्रेम की इक भावना से, शुष्क धरती को सजा दे

मित्रो! उक्त पंक्तियां बहुत ही अर्थपूर्ण हैं । विश्व में दो तरह के लोग है - संपन्न और विपन्न । संपन्न लोग भावनात्मक अलगाव अर्थात भाव खंडन की समस्या से ग्रस्त हैं, और विपन्न, उन वस्तुओं के लिए व्याकुल और क्षुधाग्रस्त हैं जो उनके जीवन को पोषित करतीं हैं । साहित्यकार का यह धर्म है कि वह सिर्फ निर्धन और अभावग्रस्त लोगों की समस्याओं को ही नहीं अपितु समृद्ध लोगों की समस्याओं को भी अपनी रचनाओं के माध्यम से मुखरित करे । रचनाकार यदि निर्धनों की समस्याओं को ही स्वर देगा तो वह क्रांति का उद्घोषक मात्र बन जायेगा, परिवर्तन का अग्रदूत नहीं। लेकिन, यदि वह अपनी रचनाओं में संपन्न वर्ग की समस्याओं को भी मुखरित करेगा तो वह क्रांति का सरगम बजाने वाला, अर्थात शांतिपूर्ण परिवर्तन चाहने वाला, एक नई दिशा देने वाला साहित्यकार कहलायेगा । उपरोक्त कालजयी पंक्तियों के रचयिता **पं॰ पारसनाथ पाठक 'प्रसून'** को शत-शत नमन है कि उन्होंने उपरोक्त कालजयी पंक्तियों को लिखकर भविष्य के साहित्यकारों के लिए दिशा और दृष्टि दी।

साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। समाज में जो भी घटित होता है... जो दिखता है... और जो घटित होता है परन्तु दिखता नहीं है.... उन सभी अच्छी बुरी बातों को अपने पाठकों के समक्ष ज्यों का त्यों लाना साहित्यकार का धर्म होता है। अच्छा साहित्यकार वह है जो किसी का पक्षकार या पैरोकार नहीं है । विश्व भर में, और भारत में भी, स्वतंत्रता आंदोलनों के दौरान, नेतृत्त्व का एक संगठित प्रयास यह रहा कि हर किसी को व्यवस्था विरोध के लिए तैयार किया जाये। साहित्यकार भी इस आंदोलन में भागीदार बने और उन्होंने व्यवस्था विरोधी गद्य पद्य लेखन से साहित्यिक कृतियों के अंबार लगा दिये। उनके लेखन से जन सामान्य में जागरूकता आई और वे अपने अधिकारों के लिए लड़े । स्वतंत्रता मिल गई... समानता का अधिकार मिल गया... संपन्नता आ गई... स्थितियाँ पूरी तरह बदल गईं। स्थितियाँ बदलने के साथ-साथ, साहित्यकारों को भी निष्पक्षता की स्थिति में आ जाना चाहिए था... उन्हें व्यवस्था की कमियों के साथ-साथ व्यवस्था की अच्छाइयों पर भी दृष्टिपात करना चाहिए था। लेकिन न जाने क्यों स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी अधिकतर साहित्यकार व्यवस्था विरोध को ही अपना धर्म मान रहे हैं। समाज में मौजूदा सकारात्मक परिवर्तन और समृद्धि लाने वाले नायक भी उन्हें नायक नहीं लगते। समाज के लिए सर्वस्व त्याग करने वाले श्रेष्ठजन भी आज के साहित्यकारों के लिए आलोचना और निंदा का पात्र ही बने रहते हैं। इस नकारात्मकता ने युवाओं के मन में बहुत अधिक बेचैनी, क्षोभ और उद्विग्नता भर दी है। इसका प्रभाव पूरे समाज पर पड़ रहा है। मैं नये रचनाकारों का आह्वाहन करता हूँ कि वे व्यवस्था विरोधी 'हैंग ओवर' से बाहर आयें और वे अपने समाज की कमियों के साथ-साथ अच्छाइयों तथा उन नीतियों, व्यक्तियों और विचारों को भी अपनी रचनाधर्मिता के विषय वस्तु के रूप में चुने जिनके कारण मौजूदा व्यवस्था हमारे बहुलता प्रधान समाज में इतने अच्छे ढ़ंग से कार्य कर पा रही है, और समाज के प्रत्येक वर्ग को आगे बढ़ने का अवसर प्रदान कर रही है ।

मित्रों, 2 अक्टूबर को हमारे देश की दो महान हस्तियों का जन्म दिन है-महात्मा गांधी और लाल बहादुर शास्त्री। इनकी स्मृति को अपने हृदय में अक्षुण्ण रखने वाली दो रचनाओं को इस अंक में विशेष स्थान दिया गया है। पं॰ पारसनाथ पाठक 'प्रसून' की रचना **स्वर्गीय शास्त्री जी के प्रति** तथा श्री ब्रजराज सिंह तोमर की रचना- **हे महामनुज!** दोनों कविताएं उत्कृष्ट और प्रेरणादायक हैं। महान व्यक्तियों के जीवन पर आधारित इस तरह की रचनाओं का आगामी अंको के लिए भी स्वागत है।

पारस परस के इस अंक में जिन रचनाकारों की रचनाओं को प्रकाशित किया गया है, हम उनके प्रति अपना आभार व्यक्त करते हैं ।

शिवकुमार बिलगरामी

आखिर फिर ऐसा वादा क्यूँ

-डा॰ अनिल कुमार पाठक

आखिर फिर ऐसा वादा क्यूँ ?
आपाधापी जीवन की,
संघर्ष भरा वह जीवन पथ
कोई शिकवा-गिला नहीं,
हो गये भले पथ में लथपथ,
कदम आखिरी, मंजिल का,
फिर साथ रहा यह आधा क्यूँ ?
आखिर फिर ऐसा वादा क्यूँ ?
दुख में ही सुख ढूंढ़ लिया,
कष्टों से कभी न घबराये ।
भूखे पेट कभी सोये,
सूखी रोटी भी खाये ।
जब आयी सुखमय वेला,
परिवर्तित किया इरादा क्यूँ ?
आखिर फिर ऐसा वादा क्यूँ ?
सबकी उन्नति के खातिर,
निशि दिन रहते थे तत्पर ।
दयासिन्धु, करूणासागर,
हर के संकट के तुम उत्तर ।
तुम जैसा संरक्षक पर,
असहाय बना यह प्यादा क्यूँ ?
आखिर फिर ऐसा वादा क्यूँ ?
कृपाशीष तेरे पाकर,
जब काटों में भी फूल खिले ।
केवल अब यह श्रेयस्कर,
तुम जिन राहों पर सदा चले ।
उन राहों पर चलने का,
तोड़ें हम अपना वादा क्यूँ ?
आखिर फिर ऐसा वादा क्यूँ ?

❖❖❖

स्वर्गीय श्री शास्त्रीजी के प्रति

- पं० पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

कर अट्ठारह-अध्याय पूर्ण तुम गीता सा ही अमर हुये ।

हे भारत के रत्न-मनोहर, विश्व-शान्ति के सच्चे साधक ।
हे क्रान्ति-दूत, हे शान्ति-दूत, हे नवयुग-गीता के निर्माणक ।
एक हाथ के शान्ति-दीप से तुमने जग को दिया उजाला ।
दूसरे हाथ में रही क्रांति के लपटों की जलती ज्वाला ।
शान्ति-क्रान्ति दोनों में तुमने भारत की है कीर्ति बढ़ा दी ।
भारत माँ के विजय-मुकुट में विश्वासों की ज्योति जला दी ।
कर्म-योग रत रह हम सबको मंगल-मय उपदेश दिये ।
कर अट्ठारह अध्याय पूर्ण तुम गीता सा ही अमर हुये ।।

जय-जवान अरु जय-किसान के नारों का निर्माण किया,
तेरे बल पर ही भारत ने नवल ऐक्य अभियान किया ।
नित कष्टों से खेल-खेल, पथ पर मधुमय मुस्कान भरा ।
युद्ध-भूमि में विजय प्राप्त कर, भारत का सम्मान रखा ।
हे माता के अमर लाल! जीवन माता-हित किया निछावर,
तूने भारत में वह शक्ति भरी, आया जैसे फिर ज्योति-जवाहर
विश्व-शान्ति के हित अपने जीवन का ही उत्सर्ग किये,
कर अट्ठारह अध्याय पूर्ण तुम गीता सा ही अमर हुये ।।

कल्पना से

कल्पने! जू जाग जा, अब भावना में रंग भर दे ।
द्वेष, द्रोहों, द्रोहियों का लेखनी से ध्वंस कर दे ।।

दूर कर दे उस निशा को ध्रुव निशा सी बन गई जो,
पाप-पाखंडों-पतन से, दीप मेरे हर गई जो ।

फिर से हमारी-सृष्टि में तू दीप तारों के जला दे ।
कर दे दिवाली आज फिर से वेणु वृंदा में बजा दे ।

सुप्त सोयेगी कहाँ तक है कहाँ तेरा सवेरा
जाग कर ही क्या करेगी हो रहा विजयी अंधेरा ।

क्या तुम्हें भी भा रहा है, विश्व का यह भाव-खंडन,
भूख से व्याकुल तड़पते, बालकों का क्षुब्ध क्रन्दन ।

यदि नहीं तो आज फिर से, क्रान्ति का सरगम बजा दे ।
प्रेम की एक भावना से, शुष्क धरती को सजा दे ।

❖❖❖

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

*बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का जन्म 8 दिसम्बर, 1897 को मध्यप्रदेश के ग्वालियर जिला में भयाना गाँव में हुआ था। यह द्विवेदी युग के ख्यातिप्राप्त कवि हैं। इनकी कविता में राष्ट्र प्रेम और भक्ति–भाव के साथ–साथ विद्राह के स्वर भी दिखाई देते हैं। इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं– **प्राणार्पण, उर्मिला, रश्मिरेखा** तथा **हम विषपायी जन्म के**। इन्हें इनके साहित्यिक योगदान के लिए 1960 में पद्म भूषण अलंकार से सम्मानित किया गया। इनका निधन 29 अप्रैल, 1960 को हुआ।*

विप्लव गान

कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ,
जिससे उथल-पुथल मच जाए,
एक हिलोर इधर से आए,
एक हिलोर उधर से आए,

प्राणों के लाले पड़ जाएँ,
त्राहि-त्राहि रव नभ में छाए,
नाश और सत्यानाशों का -
धुँआधार जग में छा जाए,

बरसे आग, जलद जल जाएँ,
भस्मसात भूधर हो जाएँ,
पाप-पुण्य सद्सद भावों की,
धूल उड़ उठे दायें-बायें,

नभ का वक्षस्थल फट जाए-
तारे टूक-टूक हो जाएँ
कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ,
जिससे उथल-पुथल मच जाए।

माता की छाती का अमृत-
मय पय काल-कूट हो जाए,
आँखों का पानी सूखे,
वे शोणित की घूँटें हो जाएँ,

एक ओर कायरता काँपे,
गतानुगति विगलित हो जाए,
अंधो मूढ़ विचारों की वह
अचल शिला विचलित हो जाए,

और दूसरी ओर कंपा देने
वाला गर्जन उठ धाए,
अंतरिक्ष में एक उसी नाशक
तर्जन की ध्वनि मंडराए,

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ,
जिससे उथल-पुथल मच जाए,

नियम और उपनियमों के ये
बंधक टूक-टूक हो जाएँ,
विश्वंभर की पोषक वीणा
के सब तार मूक हो जाएँ

शांति-दंड टूटे उस महा-
रुद्र का सिंहासन थर्राए
उसकी श्वासोच्छ्वास-दाहिका,
विश्व के प्रांगण में घहराए,

नाश! नाश!! हा महानाश!!! की
प्रलयंकारी आँख खुल जाए,
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिससे उथल-पुथल मच जाए।

सावधान! मेरी वीणा में,
चिनगारियाँ आन बैठी हैं,
टूटी हैं मिजराबें, अंगुलियाँ
दोनों मेरी ऐंठी हैं।

कंठ रुका है महानाश का
मारक गीत रुद्ध होता है,
आग लगेगी क्षण में, हत्तल
में अब क्षुब्ध युद्ध होता है,

झाड़ और झंखाड़ दग्ध हैं -
इस ज्वलंत गायन के स्वर से

रुद्ध गीत की क्रुद्ध तान है

निकली मेरे अंतरतर से!

कण-कण में है व्याप्त वही स्वर

रोम-रोम गाता है वह ध्वनि,
वही तान गाती रहती है,

कालकूट फणि की चिंतामणि,

जीवन-ज्योति लुप्त है - अहा!
सुप्त है संरक्षण की घड़ियाँ,
लटक रही हैं प्रतिपल में इस
नाशक संभक्षण की लड़ियाँ।

चकनाचूर करो जग को, गूँजे
ब्रह्मांड नाश के स्वर से,
रुद्ध गीत की क्रुद्ध तान है
निकली मेरे अंतरतर से!

दिल को मसल-मसल मैं मेंहदी
रचता आया हूँ यह देखो,
एक-एक अंगुल परिचालन
में नाशक तांडव को देखो!

विश्वमूर्ति! हट जाओ!! मेरा
भीम प्रहार सहे न सहेगा,
टुकड़े-टुकड़े हो जाओगी,
नाशमात्र अवशेष रहेगा,

आज देख आया हूँ - जीवन
के सब राज समझ आया हूँ,
भ्रू-विलास में महानाश के
पोषक सूत्र परख आया हूँ,

जीवन गीत भूला दो - कंठ,
मिला दो मृत्यु गीत के स्वर से
रुद्ध गीत की क्रुद्ध तान है,
निकली मेरे अंतरतर से!

❖❖❖

राम विलास शर्मा

राम विलास शर्मा का जन्म 10 अक्टूबर, 1912 को उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिला के ऊँचगाँव सानी में हुआ था। राम विलास शर्मा को आधुनिक हिन्दी साहित्य के आलोचक और कवि के रूप में जाना जाता है। प्रचुर और विविध साहित्य के धनी रामविलास शर्मा का निधन 30 मई, 2000 को हुआ।

कवि

वह सहज विलम्बित मंथर गति जिसको निहार
गजराज लाज से राह छोड़ दे एक बार,
काले लहराते बाल देव-सा तन विशाल,
आर्यों का गर्वोन्नत प्रशस्त, अविनीत भाल,
झंकृत करती थी जिसकी वीणा में अमोल,
शारदा सरस वीणा के सार्थक सधे बोल,-
कुछ काम न आया वह कवित्व, आर्यत्व आज,
संध्या की वेला शिथिल हो गए सभी साज ।
पथ में अब वन्य जन्तुओं का रोदन कराल ।
एकाकीपन के साथी हैं केवल श्रृगाल ।

अब कहाँ यक्ष से कवि-कुल-गुरु का ठाट-बाट ?
अर्पित है कवि चरणों में किसका राजपाट ?
उन स्वर्ण-खचित प्रासादों में किसका विलास ?
कवि के अन्त:पुर में किस श्यामा का निवास ?
पैरों में कठिन बिवाई कटती नहीं डगर,
आँखों में आँसू, दुख से खुलते नहीं अधर !

खो गया कहीं सूने नभ में वह अरुण राग,
धूसर संध्या में कवि उदास है वीतराग !
अब वन्य-जन्तुओं का पथ में रोदन कराल ।
एकाकीपन के साथी हैं केवल श्रृगाल ।

अज्ञान-निशा का बीत चुका है अंधकार,
खिल उठा गगन में अरुण-ज्योति का सहस्नार ।
किरणों ने नभ में जीवन के लिख दिए लेख,
गाते हैं वन के विहग-ज्योति का गीत एक ।
फिर क्यों पथ में संध्या की छाया उदास ?
क्यों सहस्नार का मुरझाया नभ में प्रकाश ?
किरणों ने पहनाया था जिसको मुकुट एक,
माथे पर वहीं लिखे हैं दुख के अमिट लेख ।
अब वन्य जन्तुओं का पथ में रोदन कराल ।
एकाकीपन के साथी हैं, केवल श्रृगाल ।

इन वन्य-जन्तुओं से मनुष्य फिर भी महान,
तू क्षुद्र-मरण से जीवन को ही श्रेष्ठ मान ।
'रावण-महिमा-श्यामा-विभावरी-अन्धकार'-
छँट गया तीक्ष्ण-बाणों से वह भी तम अपार ।
अब बीती बहुत रही थोड़ी, मत हो निराश
छाया-सी संध्या का यद्यपि धूसर प्रकाश ।
उस वज्र-हृदय से फिर भी तू साहस बटोर,
कर दिए विफल जिसने प्रहार विधि के कठोर ।
क्या कर लेगा मानव का यह रोदन कराल ?
रोने दे यदि रोते हैं वन-पथ में श्रृगाल ।

कट गई डगर जीवन की, थोड़ी रही और,
इन वन में कुश-कंटक, सोने को नहीं ठौर ।
क्षत चरण न विचलित हों, मुँह से निकले न आह,
थक कर मत गिर पड़ना, ओ साथी बीच राह ।
यह कहे न कोई-जीर्ण हो गया जब शरीर,
विचलित हो गया हृदय भी पीड़ा अधीर ।
पथ में उन अमिट रक्त-चिह्न की रहे शान,
मर मिटने को आते हैं पीछे नौजवान ।
इन सब में जहाँ अशुभ ये रोते हैं श्रृगाल ।
निर्मित होगी जन-सत्ता की नगरी विशाल ।

❖❖❖

विजयदेव नारायण साही

*विजयदेव नारायण साही का जन्म 7 अक्टूबर, 1924 को उत्तर प्रदेश के काशी जनपद के कबीरचौरा में हुआ था। यह तीसरे सप्तक के चर्चित प्रयोगवादी कवि हैं। इनकी रचनाओं में बड़ा ही सटीक और मर्मस्पर्शी व्यंग्य देखने को मिलता है। **मछलीघर** तथा **'साखी'** इनकी प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं। इनका निधन 5 नवम्बर, 1982 को हुआ।*

दीवारें

जिस दिन हमने तोड़ी थीं पहली दीवारें,
(तुम्हें याद है ?)
छाती में उत्साह
कंठ में जयध्वनियां थीं।
उछल-उछल कर गले मिले थे,
फिर बांटते रहे बड़ी रात तक हम बधाइयाँ ।
काराघर में फैल गई थी यही सनसनी-
लो, कौतूहल शांत हो गया।
फिर ये आए-
ये जो दीवारों के बाहर के वासी थे :
उसी तरह इनके भी पैरों में
निशान थे,
उसी तरह इनके हाथों में
रेखाएं-
उसी तरह इनकी भी आंखों में
तलाश थी।
परिचय स्वागत की जब विधियां खत्म हो गईं
तब ये बोले-
यहां कहीं कुछ नया नहीं है ।
और हमें तब ज्ञात हुआ था
(तुम्हें याद है ?)
इसके आगे अभी और भी हैं दीवारें ।
तबसे हमने तोड़ी हैं कितनी दीवारें,
कितनी बार लगाए हमने जय के नारे,
पुष्ट साहसी हाथों की अंतिम चोटों से
जब जब अरराकर टूटीं जिद्दी प्राचीरें,
नभ में उड़कर धूल गई है-
(किलकारी भी !)
लेकिन, हर बार क्षितिज पर,
क्रुद्ध वृषभ के आगे लाल पताका जैसी,
धीरे-धीरे फिर दीवारें उग आई हैं।
नथुने फुला-फुला कर हमने घन मारे हैं ।
अजब तरह की है यह कारा
जिसमें केवल दीवारें ही
दीवारें हैं,
अजब तरह के कारावासी,
जिनकी किस्मत सिर्फ तोड़ना
सिर्फ तोड़ना ।

❖❖❖

डॉ॰ जगदीश चन्द्र 'जौहर'

*डॉ. जगदीश चन्द्र 'जौहर' का जन्म 8 दिसम्बर, 1924 को जालंधर जिला के नकोदर में हुआ था। आपने सरल सुबोध हिन्दुस्तानी ज़बान में काव्य रचना कर भारतीय साहित्य को समृद्ध किया। आपकी छन्दोबद्ध रचना–"**मानवता की अमर कहानी**" महात्मा गांधी की जीवनी की चित्रात्मक प्रस्तुति करने वाली एक अद्वितीय कृति है। आप साहित्य सृजन के साथ–साथ पत्रकारिता से भी जुड़े रहे और 'ग्राम भावना' तथा 'स्वस्थ जीवन' जैसी गैर–व्यावसायिक और जनकल्याण को बढ़ावा देने वाली पत्रिकाओं के संपादक भी रहे । इनका निधन 7 नवम्बर, 2007 को हुआ।*

ठंडी-ठंडी हवा

सरसराती हुई गुदबुदी दे गई । दिलकशी दे गई, दिलबरी दे गई ।
एक जादूभरी माधुरी दे गई । बेपिये लुत्फे–बादाक़शी दे गई ।

ठंडी–ठंडी हवा ताज़गी दे गई ।
ग़म उड़ा ले गई इक खुशी दे गई ।।

बाग़ में ऐसे बादे'बहारी चली । जैसे दुलहन हो संवरी संवारी चली ।
करती अठखेलियां प्यारी–प्यारी चली । हर डगर पर चली, क्यारी–क्यारी चली ।

रूह परवर नई ज़िन्दगी दे गई ।
ठंडी–ठंडी हवा ताज़गी दे गई ।।

फूल ही फूल हैं अब चमन ज़ार में । इक शबाब आ गया हुस्ने गुलज़ार में ।
एक खुशबू बसी दिल के संसार में । झूम उट्ठे बहारों भरे प्यार में ।

आज कुदरत घटा मद भरी दे गई ।
ठंडी–ठंडी हवा ताज़गी दे गई ।।

धूप, धरती, हवा, जल, खुला आसमां । दूर तक लहलहाती हुई खेतियां ।
गाय माता का है दूध अमृत भरा । फल रसीले सभी मौसमी सब्जियां ।।

क्या मज़ा यह हवा फागुनी दे गई ।
ठंडी–ठंडी हवा ताज़गी दे गई ।।

पीली सरसों है सागर सी फैली हुई । घास गेंहू की कोमल हरी है भरी ।
स्वास्थ्य की इक रवा है हवा चेत की । श्रम भी, सेवा भी, पूजा भी, आनन्द भी ।।

घूमने की बसन्ती घड़ी दे गई ।
ठंडी–ठंडी हवा ताज़गी दे गई ।।

महकी-महकी हवाओं पे रंग आ गया । हल्का-हल्का घटाओं पे रंग आ गया ।
धूप तो धूप छाओं पे रंग आ गया । नाचिये गांवों-गावों पे रंग आ गया ।।

एक सरगम तरन्नुम भरी दे गई ।
ठंडी ठंडी हवा ताज़गी दे गई ।।

याद बांके बिहारी की आने लगी । जैसे रूठे को राधा मनाने लगी ।
मैया गोबिन्द गोपाल गाने लगी । बृज में पिचकारी रंग इक उड़ाने लगी ।।

धुन मधुर मोहिनी बांसुरी दे गई ।
ठंडी-ठंडी हवा ताज़गी दे गई ।।

मिल गये मेरे मुरली मनोहर मुझे । भूलते क्यों भला श्याम सुन्दर मुझे ।
कैसे ठुकराएंगे मेरे ठाकुर मुझे । जौहरी ने दिया मेरा ''जौहर'' मुझे ।।
मेरी बिछुड़ी हुई शायरी दे गई ।
ठंडी-ठंडी हवा ताज़गी दे गई ।।

❖❖❖

निवेदन

पारस परस पूरी तरह से एक गैर–व्यावसायिक पत्रिका है। इसका एकमात्र उद्देश्य काव्य के माध्यम से हिन्दी कवियों के पैगाम को जन–जन तक पहुंचाना है। इस पत्रिका में प्रकाशित सभी रचनाओं के साथ रचनाकारों का नाम और उनसे संबंधित उचित जानकारी दी जाती है जिससे रचनाकार को उचित श्रेय मिलता है। इतना ही नहीं, हम प्रत्येक अप्रकाशित/मौलिक रचना के प्रकाशन से पूर्व संबद्ध रचनाकार/कॉपीराइट धारक से लिखित/मौखिक अनुमति का भी भरसक प्रयास करते हैं । फिर भी यदि किसी रचनाकार, कॉपीराइट धारक को कोई आपत्ति है तो उनसे अनुरोध है कि वह हिन्दी काव्य के प्रचार–प्रसार को ध्यान में रखते हुए, इस पत्रिका के योगदानकर्त्ताओं से हुई भूलवश गलती को क्षमा कर दें। मौलिक/अप्रकाशित रचनाओं के कॉपीराइटधारक अपनी आपत्तियाँ paarasparas.lucknow@gmail.com पर मेल कर सकते हैं ताकि पत्रिका के आगामी अंकों में उनकी रचनाएं प्रकाशित करने से पूर्व लिखित अनुमति सुनिश्चित की जा सके और इस संबंध मे आवश्यक कानूनी पहलुओं को ध्यान में रखा जा सके।

इस कार्य को **पारस–बेला न्यास** द्वारा जन–जागरुकता और जनहित की दृष्टि से किया जा रहा है। **इस पत्रिका को प्राप्त करने के लिए संपादकीय कार्यालय से संपर्क कर सकते हैं।**

घर के माहौल ने शे'रो शायरी के प्रति ललक पैदा की - बालस्वरूप राही

*श्री बालस्वरूप राही आज के दौर के सर्वाधिक प्रतिभा संपन्न और लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकारों में से हैं। वर्तमान में यदि किसी कवि/शायर की पंक्तियाँ सर्वाधिक उद्धृत की जाती हैं तो वो हैं – श्री बालस्वरूप राही। **हम पर दुःख का परबत टूटा तब हमने दो चार कहे / उस पे भला क्या बीती होगी जिसने शे'र हज़ार कहे** या फिर **बुद्धिजीवी फिर इकट्ठे हो गये / फिर ज़रूरी प्रश्न टाले जायेंगे** जैसी तमाम पंक्तियाँ हैं जो लोगों के ज़हन में रच बस गई हैं।*

*राही जी के काव्य की विशेषता यह है कि वह आम बोल चाल की भाषा में गहरे भावों को व्यक्त करते हैं । पारस परस के संपादक **शिवकुमार बिलगरामी** ने इस अंक के लिए श्री बालस्वरूप राही का साक्षात्कार लिया। इस साक्षात्कार में राही जी के जीवन के कुछ ऐसे अनुद्घाटित तथ्यों को प्रकाश में लाया गया है जिन्हें पढ़कर हमारे पाठकों को गर्व और आनन्द की अनुभूति होगी।*

प्रश्न : वियोगी होगा पहला कवि, आह से निकला होगा गान-क्या आपका कविता लेखन भी इसी वियोग और दुःख की अतिरेकता का प्रस्फुटन् है या इस का कोई अन्य कारण है?

उत्तर : हम कायस्थ परिवार से हैं। मेरे परिवार में हिन्दी के साथ-साथ उर्दू और फारसी ज़बान भी बोली जाती रही है। मेरे सात भाई हैं। मैं सबसे छोटा हूँ। मेरे सभी भाई शेरो-शायरी के काफी शौकीन हैं। बचपन में सभी भाई अक्सर मिल बैठकर बैंतबाजी (अंताक्षरी) खेला करते थे। इसमें वो अक्सर बड़े-बड़े कवियों और शायरों की रचनाएं सुनाते थे । उस समय मैं 8-10 साल का रहा हूँगा । मेरे दिलो-दिमाग पर कुछ शे'रों का बहुत असर हुआ । **सब कुछ माँग लिया तुझको माँग कर/उठते नहीं है हाथ मेरे इस दुआ के बाद... शमां ने आग रखी सर पे कसम खाने को / बख़ुदा मैंने जलाया नहीं परवाने को.... फिर मगस को बाग़ मे जाने न देना । कि नाहक खून परवानों का होगा...** इस तरह के ऐसे तमाम शे'र थे जिन्होंने मेरे अंदर शे'रो शायरी की ललक पैदा की...

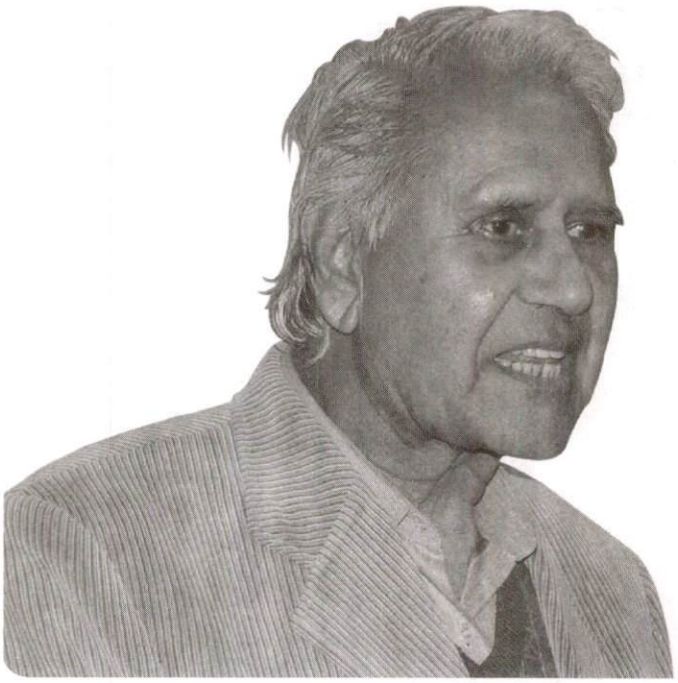

प्रश्न : क्या परिवार में किसी अन्य व्यक्ति ने आपको साहित्य क्षेत्र में जाने के लिए प्रेरित किया?

उत्तर : 15 अगस्त 1947 को भारत आज़ाद हुआ। उस समय मैं सातवीं क्लास में पढ़ता था। देश भर में वातावरण कुछ ऐसा था कि- 'मैं देश के लिए क्या करूँ। मैं देश की सेवा कैसे करूँ।' देश की सेवा का मतलब आज की तरह की देश सेवा नहीं था। लोग त्याग करने और देश को कुछ देने की सोच रखते थे। मेरे बाल मन में उस समय देश-प्रेम का ऐसा सघन भाव उठता था कि मैं भी कुछ करूँ... तब मैं उर्दू/फारसी पढ़ता था। मेरे भीतर से आवाज़ आई कि मैं हिन्दी पढ़ूँ अपने देश में हिन्दी/संस्कृत को समृद्ध बनाने के लिए कुछ कार्य करूँ। लिहाज़ा मैं उर्दू/ फारसी की पढ़ाई छोड़कर हिन्दी/संस्कृत का अध्ययन करने लगा । यही संकल्प मुझे साहित्य क्षेत्र में ले आया।

प्रश्न : सर, हमारे पाठक आपसे यह ज़रूर जानना चाहेंगे कि आप की पहली रचना कौन सी है-क्या यह गीत है या ग़ज़ल... ?

उत्तर : आपके मन में यह प्रश्न शायद इसलिए उठा कि मैं बचपन से शे'रों शायरी का दीवाना था... इसलिए शायद मैंने पहले शे'र या ग़ज़ल कहना सीखा होगा... पर ऐसा नहीं है... मेरी पहली रचना... मेरा एक गीत है-**कँटीले शूल भी दुलरा रहे हैं पाँव को मेरे। कहीं तुम पंथ पर पलकें बिछाये तो नहीं बैठीं...** उस समय यह काफी लोकप्रिय हुआ था । उस समय 'समाज' नामक एक पत्रिका निकलती थी। महावीर अधिकारी इसके संपादक थे और राम अवतार त्यागी, सहायक संपादक थे... उन्होंने इसे अपनी पत्रिका में छापा था। यह गीत मेरी पहली प्रकाशित रचना है।

प्रश्न : आपने अभी जो नाम लिए हैं-महावीर अधिकारी और राम अवतार त्यागी... ये लोग ख़ुद भी अपने समय के बहुत बड़े साहित्यकार और कवि रहे हैं... क्या उस समय इन्होंने आपको इतनी आसानी से छापना मंजूर कर लिया था?

उत्तर : आपने बहुत सही प्रश्न उठाया है। जिस समय मेरा यह गीत छपा था उस समय कवि और साहित्यकार होने का मतलब था- छन्द और लय का पूरी तरह से ज्ञान होना। उस समय ऐसी कोई भी रचना प्रकाशित नहीं होती थी जो कला पक्ष की कसौटी पर खरी न हो। उस समय संवाद और संचार के माध्यम पत्र-पत्रिकाएं ही थे... और इनके संपादक बड़े जागरुक और विद्वान लोग हुआ करते थे... आजकल जैसा दौर नहीं था कि कुछ भी लिखा और फेसबुक पर पोस्ट कर दिया । ई-मैगजीन, ऊ-मैगज़ीन... ये सब नहीं था। जिस किसी की रचना अखबार या पत्र-पत्रिका में छप जाती थी उसका नाम हो जाता था... लोग उसे जानने लग जाते थे... उसका अदब और सम्मान होता था।

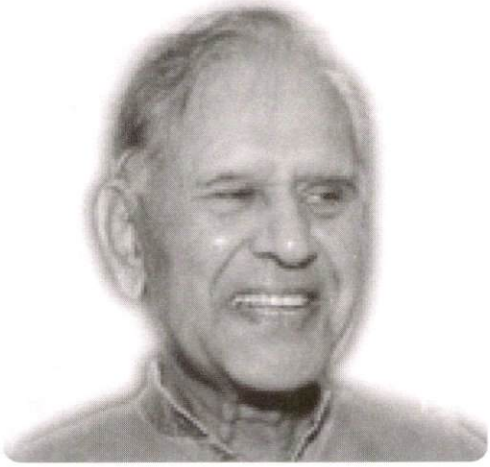

प्रश्न : लेकिन आप बड़ी आसानी से छपने लग गये?

उत्तर : अरे! नहीं... बड़ी आसानी से.. राम कहो... उस दौर में आसानी से कुछ भी नहीं होता था... बड़े पापड़ बेलने पड़ते थे... मैं जब दसवीं-बारहवीं में पढ़ता था तब से मैंने कविताएं प्रकाशन के लिए भेजनी शुरू कीं। मेरा एक जुनून यह था कि हर पत्रिका में कविता प्रकाशित करवानी है । इसलिए अपनी हैंडराइटिंग में साफ-साफ लिखकर लिफाफा में बंदकर उसे पोस्ट कर आता था। लेकिन थोड़े दिनों में ही कविताएं अभिवादन और खेद सहित वापस आ जाती थीं....

प्रश्न : खेद और अभिवादन सहित रचनाएं लौट कर आती थीं तो कैसा लगता था?

उत्तर : बहुत दु:ख होता था... वापस आई कविताओं को देखकर बुरी तरह टूट जाता था.. जिसको कहते हैं न-मन खिन्न हो जाना-एक ऐसी स्थिति आ जाती थी। मेरी बड़ी बहन मुझे उदास देखकर मुझे सांत्वना देती थी। मुझे बचपन में सभी 'बालो' कहते थे। मेरी बड़ी बहन मुझसे कहती-बालो! उदास मत हो। मैं तुम्हारी कविता 'गुलशन' से कहकर छपवा दूँगी। मेरे पिता विद्यालय में प्रधानाचार्य थे। गुलशन उनका टाइपिस्ट था। बहन समझती थी कि कविता छपने का मतलब होता है- टाइप होना। इसी सिलसिले में मुझे एक और वाक़या याद आता है। 'सरिता' मैगजीन आज भी निकलती है। पहले भी इस पत्रिका का शुमार अच्छी पत्रिकाओं में होता था और इसमें छपना गर्व की बात होती थी... उस समय विश्वनाथ जी इसके संपादक हुआ करते थे... मैं जब भी उन्हें प्रकाशनार्थ कोई कविता भेजता, वह खेद सहित वापस कर देते थे। एक दिन मुझे बहुत गुस्सा आया और मैंने उन्हें एक बेहद तल्ख़ जबान में ख़त लिखा। मैंने लिखा- मैं अपनी कविताएं भेजता रहूँगा और आप मेरी कविताएं लौटाते रहें। देखना है जीत किसकी होगी । **सर तसलीमें ख़म है जो मिज़ाजे यार आये**। अचरच की बात है कि उन्होंने इस बार मेरी कविता प्रकाशनार्थ स्वीकार कर ली। इस गीत को 'सरिता' में 'नया विश्व' शीर्षक से प्रकाशित किया गया। इस गीत को मैंने बाद में कई मंचों पर पढ़ा । इस गीत से कई किस्से भी वाबस्ता हैं....

प्रश्न : कई क़िस्से... मतलब? आप बताइये न?

उत्तर : 'नया विश्व' गीत की शुरुआत यूँ होती है-

नई एक दुनिया बसाने चला हूँ
बनाते सभी आये हैवां को इन्सां
मैं इन्सां को इन्सां बनाने चला हूँ

यह गीत मैंने एक बार एक कालेज के समारोह में तरन्नुम में सुनाया। लोग काफी प्रभावित हुए। मेरी उम्र तकरीबन 20 वर्ष रही होगी। मंच पर कविता पाठ करना, उस समय बड़ी हिम्मत का काम होता था... लोग बाग मेरे चेहरे को पहिचानने लग गये। वहाँ उपस्थित श्रोताओं में एक ऐसी लड़की भी थी जो मेरे पड़ोस के मुहल्ले में ही रहती थी। वो भी प्रभावित हुई होगी... उसने मेरे चेहरे को अच्छी तरह अपने दिमाग में उतार लिया। अपने अड़ोस-पड़ोस की लड़कियों से भी उसने मेरे गीत के बारे में, और शायद मेरे बारे में भी चर्चा की होगी।... कालेज में काव्य पाठ की घटना के लगभग एक हफ्ते बाद मेरा उस लड़की के घर की तरफ जाना हुआ... जाना यूँ हुआ कि मेरे बड़े भाई साहब हमाम साबुन से ही नहाते थे। वह साबुन जिस दुकान पर मिलता था वह दुकान उस लड़की के घर की तरफ पड़ती थी। बड़े भाई ने मुझे वहाँ से साबुन लाने के लिए भेजा। मैं ज्यों ही उसके घर के निकट पहुँचा उसने मुझे पहचान लिया। उसने तुरन्त अपनी सहेलियों को ज़ोर से आवाज लगाकर बुलाया... बबिता..... रानी.... रेखा.... जल्दी बाहर आओ.... इंसान को इंसान बनाने वाला आ गया है... उसकी

आवाज पर कुछ लड़कियाँ बाहर आ गईं और मेरी तरफ देखने लगीं... मैं लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ वहाँ से निकल भागा....

प्रश्न : अच्छा यह बताइये.... जब अध्ययन समाप्त हुआ, तब क्या आपने इस बात पर विचार किया कि अब हमें आगे क्या करना चाहिए ?

उत्तर : मैंने जैसे ही दिल्ली विश्वविद्यालय से एम. ए. (हिन्दी) की पढ़ाई पूरी की, मुझे दिल्ली विश्वविद्यालय में ही अध्यापन की नौकरी मिल गई। मैं अध्यापन कार्य करने लगा। मेरे लेखन के कारण लोग मुझे जानने लग गये थे और मेरे नाम की चर्चा इधर उधर भी हो रही थी। किसी ने मेरी चर्चा 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के मालिकों से की। उन्होंने मुझे सहायक संपादक की नौकरी का प्रस्ताव भेजा। मैंने इस बारे में अपने साथी अध्यापकों से परामर्श ली। सबने एक मत से कहा कि मुझे – साप्ताहिक हिन्दुस्तान में ज्वाइन कर लेना चाहिए। मैं वहाँ चला गया।

प्रश्न : 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' देश की शीर्षस्थ साहित्यिक पत्रिका रही है। इससे जुड़कर आपको कैसा लगा?

उत्तर : साप्ताहिक हिन्दुस्तान के माध्यम से मैं देश के लगभग सभी बड़े साहित्यकारों से जुड़ा। उपेन्द्र नाथ 'अश्क' और जैनेन्द्र कुमार जैसे लेखकों से काफी निकटता रही। मुझे इस बात का गर्व है कि वहाँ रहते हुए मैंने रचनाओं के चयन हेतु उत्कृष्टता का जो मानदंड रखा था, उसमें कभी किसी ने हस्तक्षेप नहीं किया।

प्रश्न : तब में... और अब में क्या फर्क़ आ गया है?

उत्तर : बहुत... तब की और अब की सोच में काफी फर्क आ गया है... तब लोगों की सोच व्यक्तिगत और व्यक्तिपरक नहीं होती थी... आज शायद ऐसा कह पाना मुश्किल है।

प्रश्न : आप... भारतीय ज्ञान पीठ में भी बतौर सचिव कार्य कर चुके हैं ?

उत्तर : अशोक जैन की पुत्री निशा जैन उन दिनों भारतीय ज्ञान पीठ का प्रबंधन देख रही थीं। उनकी ओर से मेरे पास प्रस्ताव आया कि मैं भारतीय ज्ञान पीठ में बतौर सचिव अपनी सेवाएं दूँ। तब मैं साप्ताहिक हिन्दुस्तान छोड़ चुका था और प्रोब इंडिया (Probe India) में संपादक था। मेरे मन में आया कि शायद मैं भारतीय ज्ञान पीठ जैसी संस्था में जुड़कर हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में बेहतर योगदान कर सकूँगा। प्रोब इंडिया का संपादन छोड़कर मैं ज्ञानपीठ में आ गया। यहाँ आकर मैंने देखा कि ज्ञानपीठ सिर्फ वयोवद्ध और लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकारों की संस्था तक सीमित होकर रह गई है। मैंने युवा साहित्यकारों को इस संस्था से जोड़ने का खाका तैयार किया। युवा साहित्यकारों को प्रोत्साहन देने के लिए नये पुरस्कार शुरू किये। उनकी पहली पुस्तक को भारती ज्ञान पीठ से प्रकाशित करवाने हेतु तंत्र विकसित किया । .. .. और भी जो कुछ बन पड़ा वह किया ।

प्रश्न : आपने ज्ञानीपीठ में साहित्यकारों को सम्मान, पहिचान और पुरस्कार दिलाने का कार्य शुरू किया... क्या कभी आपके मन में यह नहीं आया कि आपको भी सम्मान और पुरस्कार मिलना चाहिए? आप भी पदमश्री, पद्मविभूषण और ज्ञानपीठ के हकदार हैं...

उत्तर : मैं मानता हूँ कि किसी कवि / शायर के लिए सबसे बड़ा पुरस्कार और सम्मान यही है कि उसकी कविता और शायरी आम लोगों की ज़बान पर हो... इस दृष्टि से मुझे देशवासियों से काफी सम्मान मिला है... मुझे एन सी ई आर टी ने सर्वोत्कृष्ट बाल साहित्यकार का सम्मान दिया है...

प्रश्न : मेरा मतलब...

उत्तर : मैं आपका मतलब समझ रहा हूँ.... आप जिन पुरस्कारों और सम्मानों की बात कर रहे हैं... उनके लिए एक प्रक्रिया है किसी दिग्गज से अपने लिए संस्तुति करवाइये... फिर आवेदन करिये...। मैं इसे सम्मान नहीं मानता हूँ.... यह अपमान है... अस्सी वर्ष की उम्र होने को है मैंने आजतक किसी से कुछ माँगा नहीं। मैंने नौकरी के लिए कभी कोई आवेदन नहीं दिया ...किसी पुरस्कार और सम्मान के लिए आवेदन करना मेरे स्वभाव में नहीं है।

प्रश्न : ....एक जिज्ञासा और है कि आपकी धर्मपत्नी श्रीमती पुष्पा राही जी एक बहुत अच्छी कवियित्री हैं.... क्या कभी आप दोनों में काव्य लेखन के समय शिल्प या शब्दों के प्रयोग को लेकर कोई असहमति होती है...

उत्तर : आपने स्वयं कहा है कि पुष्पा राही जी बहुत अच्छी कवियित्री हैं.... वह एक व्यवहारपरक और गहरी दृष्टि रखने वाली कवियित्री हैं । असहमति से सिर्फ काव्यकला में ही नहीं अपितु अन्य कलाओं में भी निखार आता है... सकारात्मक असहमति नये विचारों और उन्हें प्रस्तुत करने के नये तरीकों को जन्म देती है। हमारे लिए यह गर्व और आनन्द की बात है कि हम सदैव एक दूसरे से सीखते और समझते हैं ।

प्रश्न : आपकी कोई रचना जिसे आप अक्सर गुनगुनाते हों ?

उत्तर : मैं समझता हूँ हरेक कवि की पहली रचना उसके पहले प्यार जैसी होती है जिसे वह कभी भुला नहीं पाता। मेरी पहली रचना, जो एक गीत है, आज भी मैं गुनगुनाता हूँ -

पलकें बिछाए तो नहीं बैठीं

कँटीले शूल भी दुलरा रहे हैं पाँव को मेरे
कहीं तुम पंथ पर पलकें बिछाए तो नहीं बैठीं !

हवाओं में न जाने आज क्यों कुछ-कुछ नमी-सी है,
डगर की उष्णता में भी न जाने क्यों कमी-सी है,
गगन पर बदलियाँ लहरा रही हैं श्याम-आँचल-सी
कहीं तुम नयन में सावन छिपाए तो नहीं बैठीं ।

अमावस की दुल्हन सोई हुई है अवनि से लगकर,
न जाने तारिकाएँ बाट किसकी जोहतीं जग कर,
गहन तम है डगर मेरी मगर फिर भी चमकती है,
कहीं तुम द्वार पर दीपक जलाए तो नहीं बैठीं !

हुई कुछ बात ऐसी फूल भी फीके पड़े जाते,
सितारे भी चमक पर आज तो अपनी न इतराते,
बहुत शरमा रहा है बदलियों की ओट में चन्दा
कहीं तुम आँख में काजल लगाए तो नहीं बैठीं !

कँटीले शूल भी दुलरा रहे हैं पाँव को मेरे,
कहीं तुम पंथ पर पलकें बिछाए तो नहीं बैठीं ।

❖❖❖

वह अनजान आदमी

- अभिमन्यु अनत

आज अचानक
हवा के झोंकों से
झरझरा कर झरते देखा
गुलमोहर की पंखुड़ियों को
उन्हें खामोशी में झुलसते छटपटाते देखा
धरती पर धधक रहे अंगारों पर
फिर याद आ गया अचानक
वह अनलिखा इतिहास मुझे
इतिहास की राख में छुपी
गन्ने के खेतों की वे आहें याद आ गयीं
जिन्हें सुना बार-बार
द्वीप का प्रहरी मुड़िया पहाड़
दहल कर काँपा बार-बार
डरता था वह भीगे कोड़ो की बौछारों में
इसलिए मौन साधे रहा
आज जहाँ खामोशी चीत्कारती है
हरियालियों के बीच की तपती दोपहरी में
आज अचानक फिर याद आ गये
मजदूरों के माथे के माटी के वे टीके
नंगी छाती पर चमकती बूंदे
और धधकते सूरज के ताप से
गुलमोहर की पंखुड़ियों जैसे
उनके कोमल सपने भी हुए थे राख
आज अचानक
हिन्द महासागर की लहरों से तैर कर आयी
गंगा की स्वर-लहरी को सुन -
फिर याद आ गया मुझे वह काला इतिहास
उसका बिसरा हुआ
आज अनजान अप्रवासी
देश के अन्धे इतिहास ने न तो उसे देखा था
न तो गूंगे इतिहास ने
कभी सुनाई उसकी पूरी कहानी हमें
न ही बहरे इतिहास ने सुना था उसके चीत्कारों को
जिसकी इस माटी पर बही थी पहली बूँद पसीने की
जिसने चट्टानो के बीच हरियाली उगायी थी
नंगी पीठों पर सह कर बाँसों की बौछार
बहा-बहाकर लाल पसीना
वह पहला गिरमिटया इस माटी का बेटा
जो मेरा भी अपना था तेरा भी अपना ।

❖❖❖

संपर्क : संवादिता, त्रियोले
रोयल रोड़, मारीशस

आगे आगे दौड़ रहा है
वह मुझको पहचान गया है
- **'सर्वेश' चन्दौसवी**

ऊँचाई है कि...

- लीलाधर जगूड़ी

(1)

मैं वह ऊँचा नहीं जो मात्र ऊँचाई पर होता है
कवि हूँ और पतन के अंतिम बिंदु तक पीछा करता हूँ
हर ऊँचाई पर दबी दिखती है मुझे ऊँचाई की पूँछ
लगता है थोड़ी सी ऊँचाई और होनी चाहिए थी

पृथ्वी की मोटाई समुद्रतल की ऊँचाई है
लेकिन समुद्रतल से हर कोई ऊँचा होना चाहता है
पानी भी, उसकी लहर भी
यहाँ तक कि घास भी और किनारे पर पड़ी रेत भी
कोई जल से कोई थल से !
कोई निश्छल से भी ऊँचा
उठना चाहता है छल से
जल बादलों तक
थल शिखरों तक
शिखर भी और ऊँचा होने के लिए
पेड़ों की ऊँचाई को अपने में शामिल कर लेता है
और बर्फ़ की ऊँचाई भी
और जहाँ दोनों नहीं, वहाँ वह घास की ऊँचाई भी
अपनी बताता है

ऊँचा तो ऊँचा सुनेगा, ऊँचा समझेगा
आँख उठाकर देखेगा भी तो सवाए या दूने को
लेकिन चौगुने सौ गुने ऊँचा हो जाने के बाद भी
ऊँचाई है कि हर बार बची रह जाती है
छूने को !

(2)

मेरा ईश्वर मुझसे नाराज़ है

मेरा ईश्वर मुझसे नाराज़ है

क्योंकि मैंने दुखी न रहने की ठान ली

मेरे देवता नाराज़ हैं

क्योंकि जो ज़रूरी नहीं है

मैंने त्यागने की कसम खा ली है

न दुखी रहने का कारोबार करना है

न सुखी रहने का व्यसन

मेरी परेशानियां और मेरे दुख ही

ईश्वर का आधार क्यों हों ?

पर सुख भी तो कोई नहीं है मेरे पास

सिवा इसके कि दुखी न रहने

की ठान ली है !

❖❖❖

संपर्क : 09411733588

लापता यक्षिणी की ख़बर पढ़ते हुए...

- प्रताप सिंह

कोई यक्षिणी राज दरबार से नहीं...
यक्ष के घर-बार से नहीं...
अपने राजदार के घर से लापता है
और आजकल
नई अमीरी के लिहाफ में पैबस्त है ।
हर बार 'आखिरी-बोली'
लगाने वाला कोई बड़ा चोर /
क्यूरेटर और
कबाड़ियां तक
हतप्रभ है

दरअसल

कुछ बेशकीमती चीजें...
अजायबघरों से शो रूम में...
और फिर किसी आलीशान पेंट हाउस में...
पहुंच
अपनी जगह बना रही हैं नये सिरे से।

अजायबघरों में
उन्हें पलट कर देखना भी गुनाह है
दूसरी निगाह से ।
शो रूम में वही-पत्थरों में कैद...
रहीने सितम [1]

सदियों के अन्तराल में
आराम तलब / अफलातून / अय्याश
अमीर दुनिया को
अपनी अदाओं से
हांक रही हैं।

शो रूम से उनकी कीमियागीरी और
मंहगा लिबास
कमसिन और बूढ़ी औरतें खरीदती हैं
प्रतिलिपियों के शिल्प में
खुद को ढाल कर
सपने में...

ब्रॉड पिट / जार्ज क्लूनी या
अज़ीम प्रेमजी की उम्र के लोगों से
ब्याह रचाती हैं
और गिन्नियाँ....
कमाती हैं
बार-बार ढलती उम्र की
जरूरतों के लिए !!!

1 रहीने सितम - अत्याचार पीड़ित

(2)

पानीदार पत्थर

ठोकरें पीते और पानी पीते
गोलाईदार पत्थर
कहीं मिलें
तो... उन्हें बजाकर देखना
उनसे आवाज़ की
कोई चिंगारी नहीं फूटेगी ।
उनके भीतर, से गुजर गईं
कई-कई नदियाँ
जरूर फूट पड़ेगीं एक साथ
और तुम्हें गले तक डूबो देंगी
फिर से ।

(3)

बेशकीमती

एक लम्हा मीठी नींद का
तभी मिलता है
जब जीवन की अगली चढ़ाई
शुरू हो रही होती है ।
उस बेशकीमती नींद और
लम्हे को अगले ही पल
आंखों से लुढ़का कर
मैं आगे बढ़ जाता हूँ !!!

❖❖❖

संपर्क : pratapsingh1949@gmail.com

हे महामनुज !

- ब्रजराज सिंह तोमर

हे महामनुज! हे मुक्ति-दूत, हे तपः पूत हे पुण्य भूत
तिमिरार्त राष्ट्र-नभ-मंडल पर तुम उदित हुए ले द्युति प्रभूत ।।

विच्छिन्न हुआ विभ्रमावरण, बीता आलस रीता प्रमाद ।
जन जन जागा ले नवोल्लास होकर सशक्त, गत भय विषाद ।।

मिट गये कष्ट, कट गये बंध, हो चला प्रगति का पथ प्रशस्त ।
दिग्दर्शित हुई गतिज ऊर्जा, न रही कुंठा कि भाव ग्रस्त ।।

योद्धा थे प्रबल विजेता थे, पर अस्त्र हीन तुम शस्त्र हीन ।
तुम सत्याग्रह के सूत्रधार, पर अर्द्ध नग्न तुम वस्त्र हीन ।।

तुम महाराज, राजाधिराज, पर उटज आश्रम के वासी ।
मूर्धन्य प्रणेता राजनीति के, होकर भी तुम संन्यासी ।।

जब सत्य हुआ तुम से पोषित हो गया असत्-अभियान थकित ।
मनुजत्व तुम्हारा देख देख, देवत्व हुआ आश्चर्य चकित ।।

वह कैसा था व्यक्तित्व दिव्य वह कैसी थी अप्रतिम वाणी ।
जिसके सामने फिरंगी की, सब शक्ति हुई पानी पानी ।।

तुमने मूकों को वाणी दी तुमने निराश को आशा दी ।
पंकिल मानव जीवन को, तुम ने हो प्रांजल परिभाषा दी ।।

हिंसा क्या होती पराभूत, यदि तुम लेते अवतार नहीं ।
दीनों का दलितों का जग में, हो सकता था उद्धार नहीं ।।

परतंत्र प्रताड़ित मानवता का अबलंबन था कौन अन्य ।
यदि तुम कृतार्थ करते न लोक कैसे होती यह धरा धन्य ।।

शिक्षा, दर्शन विज्ञान, नीति, शुचिता, सहिष्णुता सदाचार ।
अस्तेय, अहिंसा, सत्य, त्याग, मंथन कर विधि ने बार बार ।।

नव नीत सदृश जो प्राप्त किया, वह एक तत्व तुम थे गांधी ।
मानवता-भूषण युग सर्जक, श्रद्धेय, ध्येय तुम थे गांधी ।।

हे भव-वैभव हे सत्य संघ, सत् स्वत्व तुम्हारा जीवित है
जब तक मानव की संसृति है, मनुजत्व तुम्हारा जीवित है ।।

❖❖❖

संपर्क : 09839023023

हिन्दी अधिकारी

- बुद्धिनाथ मिश्र

पीर बवर्ची भिश्ती खर हैं
कहने को हम भी अफ़सर हैं
सौ-सौ प्रश्नों की बौछारें
एक अकेले हम उत्तर हैं

इसके आगे, उसके आगे
दफ़्तर में जिस-तिस के आगे
क़दमताल करते रहने को
आदेशित हैं हमीं अभागे

तनकर खड़ा नहीं हो पाए
सजदे में कट गई उमर है

यों दधीचि की हैं सन्तानें
रीढ़ नहीं है अपने तन में
ऊपर से गांधी गिरमिटिया
भीतर भगत सिंह है मन में

काशी के दादुर भी पंडित
हम तो बस अछूत मगहर हैं

उल्टी गंगा बहा रहे हैं
नये दौर के नये भगीरथ
जितना दूर चलें दिन भर में
उतना लम्बा हो जाये पथ

हम तो नाग सँपेरे वाले
हमसे नहीं किसी को डर है

सारी प्रगति आँकड़ों तक है
बढ़ता पेट कर्मनाशा का
रोज़ देखना पड़ता हमको
होता चीर-हरण भाषा का

हर वैतरणी पार कराने
पूछ गाय की छूमंतर है

(2)

राजा के पोखर में

ऊपर ऊपर लाल मछलियाँ
नीचे ग्राह बसे
राजा के पोखरे में है
पानी की थाह किसे

जलकर राख हुईं पद्मिनियाँ
दिखा दिया जौहर
काश कि वे भी डट जातीं
लक्ष्मीबाई बनकर
लहूलुहान पड़ी जनता की
है परवाह किसे ।

कजरी-वजरी चैता-वैता
सब कुछ बिसराए
शोर करो इतना कि
गेहूँ के संग-संग बेचारी
घुन भी रोज पिसे ।

सूखे कभी जेठ में
सावन में कुछ भीजे भी
बड़ी जरूरी हैं ये
छोटी-छोटी चीजें है
सारे नरनाह फँसे

❖❖❖

संपर्क : 09412992244

गीले रंग हुए यादों के

- गोविन्द गुलशन

गीले रंग हुए यादों के हम उसकी तस्वीर बनाएँ
पूर्ण समर्पण करें स्वयं का कुछ आँसू के फूल चढ़ाएँ

याद उसे भी आती होगी उसने भी तो प्यार किया था
वापस आ जाने का वादा भी तो सौ सौ बार किया था
बन जाए तस्वीर अगर तो बिसरी बातें याद दिलाएँ
गीले रंग हुए...

सब कहते हैं तस्वीरें भी सुन लेती हैं मन की बातें
तस्वीरों से बातें करके कट जाती हैं सूनी रातें
उसके आगे ऐसा रोएँ उसकी आँखें भी भर आएँ
गीले रंग हुए...

वो परदेसी भूल गया हो ऐसा भी तो हो सकता है
उसके दिल में कोई नया हो ऐसा भी तो हो सकता है
यूँ करते हैं रोना छोड़ें पागल मन को ही समझाएँ
गीले रंग हुए...

दर्पण झूठ नहीं बोलेगा

झूठ नहीं बोलेगा दर्पण झूठ नहीं बोलेगा
सच का बैरागी सच के ही आँगन में डोलेगा

साधारण दर्पण से मेरा भी संवाद हुआ है
रोम-रोम में केवल सच का अंतर्नाद हुआ है
मैं कहता हूँ झूठे बंधन दर्पण ही खोलेगा
दर्पण झूठ नहीं बोलेगा...

चेहरे की लिपियों का दर्पण परिमापन करता है
झूठ नहीं गढ़ता है दर्पण सत्यापन करता है
चेहरा अपना धोए कोई तो कितना धो लेगा
दर्पण झूठ नहीं बोलेगा...

आँसू मत कहिए करुणाजल होता है आँखों में
मन का सच ही सच्चे मोती बोता है आँखों में
आँखों का अमृत आँखों में सच ही तो घोलेगा
दर्पण झूठ नहीं बोलेगा...

❖❖❖

संपर्क : 09810261241

गीत की सृष्टि

- कृष्ण प्रताप सिंह 'सुमन'

कुछ तुम्हारा सृजन, कुछ हमारा सृजन,
इस तरह गीत की सृष्टि होती रहे ।

प्रेम के पंथ पर अनवरत पग बढ़ा,
प्रीति की रीति को हम निभाते रहे ।
ठोकरें ज़िन्दगी में मिली अनगिनत,
किन्तु दुख में सदा मुस्कुराते रहे ।

कुछ तुम्हारा कहन, कुछ हमारा कहन,
इस तरह भाव की वृष्टि होती रहे ।

वेदना को सँजोया हृदय ने सदा,
जानता मैं रहा जो न तुम सह सके ।
त्रास जो भी मिली मुस्करा कर सहा,
ये अधर भी हिले पर न कुछ कह सके ।

कुछ तुम्हारी लगन, कुछ हमारी लगन,
इस तरह मीत पर दृष्टि होती रहे।

क्रोध की ज्वाल जो भेजते तुम रहे,
प्रेम के वारि से शान्त होती रही ।

प्रीति की डोर में चाह जब तक पली,
साधना-पंथ पर बीन बजती रही ।

कुछ तुम्हारा मनन, कुछ हमारा मनन,
इस तरह प्रेम की पुष्टि होती रहे ।

अड़चने चाह में शूल बोती रहीं,
अश्रु माला नयन नित्य जपते रहे ।
लक्ष्य का पंथ मुझको मिलेगा कभी,
उर यही कह रहा है, न जग से डरें ।

कुछ तुम्हारा शयन, कुछ हमारा शयन,
इस तरह कष्ट में तुष्टि होती रहे ।

❖❖❖

संपर्क : 09415566180

गीत अपनी जिन्दगी

- विजय प्रसाद त्रिपाठी

भारती की वन्दना के, गीत अपनी जिन्दगी ।
कुछ नहीं इससे अधिक है, मीत अपनी जिन्दगी ।।

रह विरत अन्याय से, बस-न्याय जिसका पक्ष है ।
धर्म जिसकी संहिता अरु, कर्म में भी दक्ष है ।
है अलौकिक रश्मि रथ पर, नीत अपनी जिन्दगी ।
भारती की वन्दना के गीत, अपनी जिन्दगी ।।

जन्म यौवन या जरा हो उत्सवी लगते गले ।
भोर होता, सूर्य चढ़ता शाम जीवन की ढले ।
हर अवस्था में सनातन, रीत अपनी जिन्दगी ।
भारती की वन्दना के गीत, अपनी जिन्दगी ।।

शस्य श्यामल वायु जल, देती हमें जो सर्वदा ।
धन्मदा है, प्राणदा है, भक्तिदा है शक्तिदा ।
मोक्षदा, माँ भारती की, प्रीत अपनी जिन्दगी ।
भारती की वन्दना के, गीत अपनी जिन्दगी ।।

राम खेले, कृष्ण खेले, जिस धरा की गोद में ।
जन्म का ही ऋण असीमित, परवरिश है सूद में ।
मातृभू के हाथ है बस, क्रीत अपनी जिन्दगी ।
भारती की वन्दना के, गीत अपनी जिन्दगी ।।

भोगवादी क्षुद्रता, पाश्चात्य ने हमको दिया ।
हमने माना सन्त है वह, अन्य के हित जो जिया ।
कष्ट में है और के, नवनीत अपनी जिन्दगी ।
भारती की वन्दना के गीत अपनी जिन्दगी ।।

हम पुरोधा शून्य के, परमाणु संयुत शक्ति हैं ।
वीर माँ की कोख के, जिज्ञासु व्यूही व्यक्ति हैं ।
वेद गीता सप्त स्वर, संगीत अपनी जिन्दगी ।
भारती की वन्दना के, गीत अपनी जिन्दगी ।।

देह धारी हैं मगर, संन्यस्त और विदेह भी ।
पाँच तत्वों से बनी, नश्वर 'विजय' यह देह भी ।
राष्ट्रहित में मृत्यु भी, है जीत अपनी जिन्दगी ।
भारती की वन्दना के, गीत अपनी जिन्दगी ।।

❖❖❖

संपर्क : 09454411591

ये फैसले का वक़्त

- आनंद क्रांतिवर्धन

ये फैसले का वक़्त है, तू आ कदम मिला
ये इम्तहान सख़्त है तू आ कदम मिला

भारत बनेगा स्वच्छ ये मोदी ने कहा है
सूरत संवारनी है अब मोदी ने कहा है
संकल्प ले के बढ़ चलो मोदी ने कहा है
करवट बदल रहे हैं हम मोदी ने कहा है

तू बोल किसके साथ है तू आ जरा बता
ये फैसले का वक़्त है तू आ कदम मिला

आओ के साफ कर लें अब ज़हनों से गंदगी
बाहर की गंदगी हो या भीतर की गंदगी
कि साफ सफाई तो इबादत है बंदगी
इसके बिना तो मौत से बदतर है जिंदगी

तू सोचता है क्या अरे खुलकर जरा बता
ये फैसले का वक़्त है तू आ कदम मिला

ये जंगे सफाई नहीं ये इंकलाब है
भारत को बदल देगा ये वो इंकलाब है
पूरा करेंगे हम कि ये बापू का ख़्वाब है
धरती को बुहारेगा जो वो आफ़ताब है

सूरज है अपने ताप के जलवे जरा दिखा
ये फैसले का वक़्त है तू आ कदम मिला

हम कितने सभ्य हैं अरे सोचो तो तुम ज़रा
ऐसे किए हैं काम कि दूषित गगन धरा
चीखती हुई ये हवाएं बुला रहीं
बेज़ार बेकरार फ़िज़ाएं बुला रहीं

तू सुन रहा है तूने हमे क्या दिया सिला
ये फैसले का वक़्त है तू आ क़दम मिला

हाँफती हुई हमें गंगा बुला रही
सीने में गंदगी के फफ़ोले दिखा रही
अब मुझको मोक्ष चाहिए गंगा बता रही
भागीरथ को अपनी बाहों में ममता बुला रही

ये मां के दिल का दर्द है ज़िंदा लबों से गा
ये फैसले का वक़्त है तू आ कदम मिला

❖❖❖

संपर्क : 9810260289

गुलों की जिंदगी का सार...

- ब्रह्मदेव शर्मा

(2)

तिमिर मिटना नहीं संभव, महज छिपना छिपाना है
इसे गर दूर करना हो तो, कुछ जलना जलाना है

अगर दीपक जलायें तो सिमट उसके तले आये
धरा पूरब में हो रोशन, तिमिर पश्चिम में छा जाये
कभी चंदा अमावस से मुखातिब नहीं होता
उजाली रात पूनम की, अमावस स्याह हो जाये
चमकना एक जुगुनूं का, तिमिर का मात खाना है।
तिमिर मिटना नहीं संभव...

अंधेरे मन के अंदर भी, बहुत गहरे समाये हैं
झमेले सारी दुनिया के, अंधेरों के ही साये हैं
विरोधों से भरी दुनिया बहुत ही खूबसूरत है
जहां पर रात शरमायें, वहीं दिन भी लुभाये हैं
खिला जिस डाल पर गुल है, वहीं कांटा भी आना है।

कहीं गुलशन में जाकर देखना, बारीकियां इसकी
जहां जीवन पनपता है, वहीं पर मृत्यु है उसकी
कभी कुर्बानियां देखो, तो नन्हें बीज की देखो
वो मिटता है तो पाते फूल, फल, छाया यहां उसकी
गुलों की जिंदगी का सार, गुलशन को सजाना है

जीवन का आधार उसे भी दे दो

एक सुनहरी किरण उसे भी दे दो
जीवन का हर चरण उसे भी दे दो।

अंधकार से हर पल जिसका नाता
मन में जिसके फैला है सन्नाटा
सूरज, चंदा रोज भगाते तम को
लेकिन जिस घर दीप नहीं जल पाता
जुगनू की सौगात उसे भी दे दो।

वैभव जिसके लिये दूर की कौड़ी
जिसकी ज्यादा नहीं, जरूरत थोड़ी
जो मेहनत करता, भूखा सो जाता
दुख दर्दों ने जिसकी बांह मरोड़ी
उसको भी खुशियों के कुछ पल दे दो।

लड़की साथी बन साया बन जाती
सुख में दुख में सब में साथ निभाती
पीढ़ी दर पीढ़ी जिससे बढ़ती है
नव जीवन देकर जननी कहलाती
जीवन का आधार उसे भी दे दो।

❖❖❖

संपर्क : 09971676396

देती है ऊंचाई मां

- अजय 'अज्ञात'

घर-घर चूल्हा-चौका करती, करती सूट सिलाई मां
बच्चों खातिर जोड़ रही है देखो पाई-पाई मां

बाबू जी की आमद भी कम ऊपर से ये महंगाई
टूटे चश्मे से बामुश्किल करती है तुरपाई मां

टीका, कुंडल, हंसली, कंगन, तगड़ी, नथ, बिछुए, चुटकी
बेटी की शादी की खातिर सब गिरवी रख आई मां

सहते-सहते सारे घर की बढ़ती जिम्मेवारी को
घटते-घटते आज बची है केवल एक तिहाई मां

सारे रिश्ते झूठे निकले मतलब के थे यार सभी
केवल तूने ही आजीवन निश्छल प्रीत निभाई मां

पिज्जा, बर्गर कब होते थे होते थे पूड़े मीठे
देती थी रोटी पर रखकर शक्कर और मलाई मां

दर्जन भर लोगों का कुनबा फिर भी था सांझा चूल्हा
मिलजुल कर रहती थीं घर में दादी, चाची, ताई मां

घेरा जब-जब अवसादों ने अंधियारों में जीवन को
उम्मीदों के दीप जलाकर भोर सुहानी लाई मां

नाम सभी हैं गुड़ से मीठे चाहे मैं जो भी बोलूं
बी जी, जननी, माता, मम्मी, मैया, अम्मा, माई, मां

बच्चा ही मकसद होता है मां के जीवन का 'अज्ञात'
हिम्मत दे उसके ख्वाबों को देती है ऊंचाई मां

❖❖❖

संपर्क : 09810561782

ख़ुशनुमा कविता

-पुष्पा राही

(1)

ख़ुशनुमा कविता ज़रा हो जाए अब
वक्त ऐसा फिर मिलेगा जाने कब

आज सूरज भी उगा है चमकता
अरुण मुख उसका दिखा है दमकता
साफ सुथरा लग रहा आकाश भी
आज जैसे हो रहा अनुकूल सब

आज मन भी शान्त सागर सा लगा
बाद बरसों ज्यों मिले भाई सगा
चैन से कब बैठने उसने दिया
की नहीं परवाह उसकी हमने जब

पल सही, दो पल सही, कुछ पल सही
लगा ज्यों पुरवा हवा भीतर बही
झंझटों ने मुक्ति दी कुछ देर की
कहां होता है कभी ऐसा सबब

याद आई आज पिछली याद वह
साल दसियों साल के भी बाद वह
याद वह जो प्यार का अंकुर बनी
याद क्या वह याद भी साकार रब

गीत डूबा आज़ फिर से प्यार में
छंद की लय में तुकों की धार में
आज जैसे बात ही कुछ और है
ठीक वैसी जो हुआ करती थी तब

(2)

बदली दुनिया

हुई पहुँच से परे आज की दुनिया सारी
पता न चलता जीती है या है यह हारी

पेट नहीं भरता इसका आडम्बर रचकर
और अधिक, हां और अधिक की कर तैयारी

सिर पर रखकर पैर भागती दिखती हर क्षण
दिखती नहीं कहीं भी हमें नींद की मारी

समय नहीं है उसके पास बात करने का
और करेगी तो मिठास भी उसकी खारी

बदली क्या, बदल गए सब रिश्ते नाते
दुनिया है पर भूल गई सब दुनियादारी

साथ अगर देते हैं उसका तो भी आफत
और न दें तो कहते लोग गई मतिमारी

हम अपनी मति का क्या करें नहीं बदली वह अब तक
वह उल्टे पड़ने लगती हम पर ही भारी

वह बदलेगी कब यह तो अब वह ही जाने
बदली दुनिया मगर बनी कांटों की क्यारी

❖❖❖

संपर्क : 011-27213716

ओ मेरे दर्द!

-प्रतिमा श्रीवास्तव

ओ मेरे दर्द
तन के
मन के
आत्मा के
तुमसे मुक्ति
पाने की कोशिश में
कर दिए तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े
लेकिन
तारा मछली की तरह
तुम उतने ही आकार में जी गए !
रक्तबीज असुर की भांति
अपने रक्त की एक-एक बूंद से
जनम गए
अरबों खरबों असुर के रूप में
लो करती हूँ स्वीकार
अपनी पराजय
तुम्हारी जय
जरा सुनो
आघात को अपने
थोड़ा सहम बनाओ
और मेरी
सहनशीलता की सीमा से
परे न जाओ
न जाओ न !

खड़ी हूँ....

खड़ी हूँ अपने घर की
देहरी के भीतर
देख रही हूँ
दर तक जाती इस राह को,
जो क्षितिज से पहले
एक घने मोहक वन-प्रांतर में
हो गयी है विलीन !
जहां तक साफ दीखती है
यह राह,
उसके दोनों ओर
उलझे-सुलझे
गुथे-छिटके
रंगहीन दृश्य
आमंत्रित करते हैं
मुझे
उलझने-सुलझने
गुंथने और छिटकने को,
मैं और खड़ी जड़वत्
या जकड़ी हूँ
स्वैच्छिक या आरोपित
बेड़ियों में ।
या
पैर मेरे चिपक गए हैं
देहरी की जमीन पर
यदि देहरी की सीमा
को तोड़ा
तो तलवे
की खाल
देहरी के भीतर ही,
चिपकी रह जाएगी
और मैं
उस राह पर
बना पाऊंगी
कुछ रक्तरंजित
पद-चिन्ह्,
फिर पीड़ा असह्य
होने पर
बदरंग परिद्श्य
की मटमैली कांटेदार झाड़ी में
उलझ
होऊंगी लहुलुहान ।
काश !
कदम बढ़ाने की
कोशिश मात्र से
ही सारे बंधन
टूट जाएं,
और
सभी रंगहीन परिदृश्य
दमक - पुलक उठें।
इन्द्रधनुषी रंगों-से ।

संपर्क : 9871171078

❖❖❖

क्षुधा

- डॉ॰ शुभश्री पाणिग्रही

क्षुधा, मानवीय क्षुधा
कहने को सिर्फ मानवीय
लेकिन तमाम अमानवीयता
छिपी हुई है इसमें ।

क्षुधा...
केवल भोजन नहीं मांगती
मांगती रहती सब कुछ...
ज्यादा से ज्यादा... और ज्यादा
दे.... और दे.... मुझको
रुपया... पैसा... भोग... लालसा...

अतृप्ति...
भूख को बढ़ा देती
पृथ्वी की सृजन शक्ति भी
हार मानती है क्षुधा के आगे ।

क्षुधा...
मानवीय क्षुधा
खा जाती है नदियों से रेत
लहलहाते खेत खान-खदान
पहाड़... बियाबान सब कुछ...
फिर भी अतृप्त रहती ।
मांगती रहती है ज्यादा... और ज्यादा...

(2)

उसकी पीठ पर

सूरज कभी नहीं बदलता
धूप व साया बदलते रहते
तेज बदलते रहते ।

पहाड़ नहीं बदलता
लेकिन उसके पीठ पर
फलती फूलती वनराजि
बदल जाती है ।

अगर तुम कहोगे
नहीं बदलना मुझे
रहना वैसे ही मां की गोद में
कोमल ममता की छांव में
लिपट सदा के लिए
होगा नहीं ऐसा कभी ।

तुम बढ़ोगे
कदम दर कदम
मां की आंखें
मुरझांएगी अपराहन उपरान्त
वार्धक्य संध्या के साथ ।
तुम बढ़ जाओगे
छांव अंधेरे में पलट जाएगी
मां भी नहीं होगी दुनिया में
पहाड़ सो जाएगा
बर्फीली सेज़ बिछाकर ।

❖❖❖

संपर्क : subhashree.rajyasabha@gmail.com

तुम्हारे आने से

- कविता अरोड़ा

तुम्हारे आने से
पतझड़ सी जिंदगी
बहार बन गई

जीवन था सूखा बाग
खिल कर बगीचा बन गया हर कोना
हर फूल खिलने लगा
जैसे बाग फिर से महकने लगा
तुम क्या आए
पतझड़ सी जिंदगी
बहार बन गई

आने से तुम्हारे
चहकने लगे हैं हम भी
कोयल की कूक से
कूकने लगे हैं हम भी
फूलों को देख मुस्कुराने लगे हैं
गमों की आँधियो से दूर जाने लगे हैं
आने से तुम्हारे
पतझड़ सी जिंदगी
बहार बन गई

मन की पकड़ छूट रही है अब
जाने कहाँ विचरने लगा है
कभी जमीन पर चलने से डरता था
अब आसमान में उड़ने लगा है
पाकर साथ आप का
खुद पर इतराने लगा है
आने से तुम्हारे
पतझड़ सी जिंदगी
बहार बन गई

जीवन की किश्ती
जब डगमगा रही थी
गमों की लहरें
करीब आती जा रही थीं
सांस भी अटकने लगी थी
जीवन लौ भी कँपकँपा रही थी
जाने कब तुम कैसे,
किश्ती किनारे ले आए
निकाल गमों के भंवर से
जीवन से मिला गए
बीच भंवर से निकाल कर
किनारा दिखा गए
तुम क्या आये
पतझड़ सी जिन्दगी
बहार बन गई

....अभी बाकी है

ग़मो की कतार अभी बाकी है
आंखो में नमी अभी बाकी है
जीवन में खुशी मिले ज़रूरी नही
ग़मो की सौगात भी काफी है

जीवन पथ पर चलते चलते
रुक गए थे थक कर, पर
चलना तो नियति है पथिक की
चलना ही जीवन है,
रुकना मृत्यु है
और मृत्यु अभी बाकी है

चोट पर चोट खाते रहे
हर ज़ख्म को छुपाते रहे
कोशिश में मुस्कुराने की
ग़मों को आंचल में छुपा
भूल गए थे...
आंखों मे तो आँसू
अभी बाकी हैं

❖❖❖

संपर्क : 9971252902

रंजना पोहनकर की कविताएं

(1)

सृजन

सृजन के क्षणें में
मन पारे से भी अधिक
चंचल हो जाता है
परिणाम
सृजनशीलता
आँखों की किरणें बनती हुई
अपने आप में
कलात्मक अभिव्यक्ति
होती हुई
इस कोने से
उस सीमा तक
शायद उसके पार जाती है
और
आत्मीय रागों के
जूही चंदन के
शिलालेख
बनते हैं

(2)

रंगीन किमया

क्यों नहीं
ये सुनहली किरणें
रुक जाती हैं
तुम्हें देखकर
तुम आये हो
इसलिए
जहाँ कहीं भी रंगीन किमया
रंग-रेखाओं की मिली है
फूलमंत्र मिले हैं,
राग-स्वर मिले हैं
मैंने अपनी झोली में
रख लिए हैं आहिस्ता से
यह चाँद सितारे
सुनहली किरणों के
गहने बन गये हैं
और पंखुड़ियाँ भी
हाँ-शायद
तुम आये हो
इसलिए

(3)

एकांत की गरिमा

रागों की
एकांत की
रागदारी की
सजग-चेतना की
प्राणों की
दिन - रात घूमती
हृदय पटल पर
संवेदनाओं की बेचैनी की
मूर्तिमंत आभा और
मनोरम सुनहले दृश्यों की
सुंदरतम् मूर्तियाँ
जी करता है
इन्हे पढ़ लूँ, लिख लूँ
क्षण-क्षण चलती
शीत चाँदनी में
बहक लूँ

(4)

इबादत

पत्थरों के पीछे जाती हुई नियति
नये आकाश के
निर्माण में
इबादत बन
ज़मीं पर उतर आती है
यह इबादत स्वरों की है
गुलाब ख़ुश्बू से लिखो-गाओ
दुआ करती हूँ
इन्हे मेरे आँगन में भी
रचने-बसने दो

(5)

ललिता गौरी

कई दफ़ा अँधेरा घिरा आता है
सहज मन में
जीने नहीं देती
ज़िंदगी की झल्लाहटें
ऐसे में
बेचैन चिंतातुर
होने की ज़रुरत नहीं है
बस
ज़िंदगी को बिकने ना दो
मन पत्थरों में
क़ैद होने ना दो
भीतों पर
''ललिता गौरी'' चढ़ने दो
बेला-सृजन होने दो

(6)

मियाँ मल्हार

जीवन के सुख-दुख
पार करता
अलबेला शिल्प हूँ मैं
आँधी में दीप जलाता
भीतर के
सुनहले पल खोलता
नीरव में स्वर
बहाता
हँसाता-रुलाता
खोया सा अवतार हूँ मैं
स्वरों का इंद्रधनुष हूँ मैं
''मियाँ मल्हार'' हूँ मैं

कोई मिल जाए ऐसा....

- रूपाश्री शर्मा

कोई मिल जाए ऐसा...
जो सिर्फ,
मेरे हाथो को थाम कर चलना चाहे...

कोई मिल जाए ऐसा...
जो मेरे साथ, चाँद को निहारते हुए
सारी रात गुजारना चाहे...

कोई मिल जाए ऐसा...
जो मेरी ख़ामोशी को समझ जाए,
जो मेरी धड़कनों को सुनना चाहे

कोई मिल जाए ऐसा...
जिसके काँधे पर सर रख,
मैं दुनिया को भूल जाऊं...
जो मेरी साँसों में घुलना चाहे...

कोई मिल जाए ऐसा...
जिसकी आखों में,
मैं बेइंतहा प्यार देखूं,
जो मेरी आखों में,
सिर्फ खुद को देखना चाहे...

कोई मिल जाए ऐसा...
जिससे हर बार मैं जीत जाऊं,
जो मेरी आखों में,
सिर्फ खुद को देखना चाहे...

कोई मिल जाए ऐसा...
जिससे हर बार मैं जीत जाऊं,
जो मेरी एक मुस्कान पर...
अपना सब कुछ हारना चाहे...

कोई मिल जाए ऐसा....
जिसके साथ गुजरा इक-इक पल,
एक पूरी जिन्दगी लगे...

कोई मिल जाए ऐसा...
जिसके सजदे में,
मेरा सर हमेशा झुकता रहे,
जो अपनी दुआओं में....
मुझे ही पाना चाहे...

काई मिल जाए ऐसा...
जिसका एहसास,
मेरी हर कविता में हो,
जो मेरे लिखे...
हर शब्द का अर्थ बनना चाहे...!!!

❖❖❖

संपर्क : rupasrisharma@gmail.com

पहाड़ तुम्हें बुलाता है

- मीना पाण्डेय

चुप है वीणा तार
गुंजन किसे बुलाता है
बैठी राह में नयन बिछाए
मन चिदम्बरा का प्यासा है
विरहणी सी व्याकुल है ग्रंथी
कुछ पल्लव कहना चाहता है
पूज्य पंत जी फिर आ जाओ,
पहाड़ तुम्हें बुलाता है

हिम शिखरों के मन व्यथित हैं
नदियों की कल-कल है सूनी
खग-विहग सब मौन पड़े हैं
है कविता वाली बात अधूरी
तुम्हें लोचन उलझाने फिर
बालों का बाल-जाल बुलाता है

पूज्य पंत जी फिर आ जाओ,
पहाड़ तुम्हें बुलाता है

बसंत के मौसम में जब भी
छू कर जाती मंद पवन
याद हमे आते हैं अक्सर
पहाड़, प्रकृति 'औ' पंत
तुम्हें निमंत्रण नक्षत्रों सा
अवनी का कण-कण देता है
पूज्य पंत जी फिर आ जाओ,
पहाड़ तुम्हें बुलाता है

हे युग निर्माता ज्ञानपीठ
हे कविता के छायावादी
अब भी वर्षा ऋतु बादल का
घूँघट ओढ़े है आती
अब शैल में जलद,
जलद में शैल देखा जाता है
पूज्य पंत जी फिर आ जाओ,
पहाड़ तुम्हें बुलाता है

संपर्क : 09891542794

मन का प्रतिशोध

- डॉ॰ सीमा गुप्ता (शारदा)

जीवन के संग्राम मे, मै अर्जुन बनने लगी हूँ ।
आशा-धीरज के सब हथियार तजने लगी हूँ ।

जब तक बुद्धि का पास कोई आयेगा नही
तब तलक हृदय मेरा ये अस्त्र उठायेगा नही ।

मैं क्यों स्वार्थ बनके परमन तन का भेदन करूँ
और करके हठ मैं उस जीवन का छेदन करूँ ।

किसी को ठेस पहुँचे, न ये मेरा दस्तूर है
कायर कहे कोई मुझे, हारना भी मंजूर है ।

कोमल हूँ, कमजोर नहीं, ये विचारा किसी ने,
मेरे अभिमन्यु हृदय को घेर कर मारा किसी ने ।

उठा अस्त्र चहुँ ओर हाहाकार गहरा दूंगी मैं
कायर जग पर जीत का परचम लहरा दूंगी मैं ।

अगर ये विचारा किसी ने, कि एक ''बिचारी'' हूँ मैं
नर को किया उत्पन्न मैंने, आज की नारी हूँ मैं ।

संपर्क : 08826795107

❖❖❖

मनवाँछित मंजिल पाना है

- कौशलेन्द्र सिह ''राष्ट्रवर''

मनवाँछित मंजिल पाना है, भाव लगन भावना चाहिए ।
अर्जुन वाला लक्ष्य चाहिए, तीव्र लगन साधना चाहिए ।।

सांसारिक जंगल काँटे हैं, भोगों ने मन दिल बांटे हैं ।
भटक गया है पंथी पथ से मज़बूरी में दिन काटे हैं ।।
घोर निसा भोगों का तम है, मादक भटकाओं का वन है ।
समझ नही पा रहा बटोही, क्या साध्य और क्या साधन है ।।
ऐसे में संयम व्रत वाला, छाँव, छाँव वितान तना चाहिए ।
अर्जुन वाला लक्ष्य चाहिए...

सबसे पहले लक्ष इष्ट हो, भोगों की लालसा नष्ट हो ।
केवल चिड़िया लक्ष दिखे और, साधक नही चरित्र भ्रष्ट हो ।।
अमृत घट पा सकता है वह, जो स्थितियों का विष पी ले ।
स्थिर बुद्धि पका साधक हो, जग में संन्यासी सम जी ले ।।
भटक नही सकता साधक वह, भोगों से अनमना चाहिए ।
अर्जुन वाला लक्ष्य चाहिए...

तन मन की समिधा लेकर वह, भावों का जो हवन कर सके ।
जग भटकावन के विकार की भावुकता का शमन कर सके ।।
गुरू के आदर्शों की सीढ़ी, चलता हुआ अनुमन कर सके ।
ईशकृपा का पात्र बने वह, मर्यादा का चलन कर सके ।।
दृढ़ इच्छा धारी साधक वह, आत्मज्ञान का घना चाहिए ।
अर्जुन वाला लक्ष्य चाहिए...

ऐसे साधक को इस जग में, नहीं असम्भव मंजिल पाना ।
जैसे मंजिल पाकर जग में आता है वह आत्मदिवाना ।।
शासन और समाज उसे तब सुविधाओं का ताना-बाना ।।
आशीर्वाद उसे मिलता है, और ''राष्ट्रवर' यश का पाना ।।
यश के चक्कर में साधक को पथ से नही भटकना चाहिए ।
अर्जुन वाला लक्ष्य चाहिए.....

❖❖❖

संपर्क : 09450389461

धरती का लाल

- उदय शरण

सुनो, गौर से सुनो
कि मैं हूं - लाल
इस धरती का लाल,
मैं कागज़ का नहीं
कुदरत का तराशा फूल हूं
जिसके खिलने पर
हर माली इतराता है,
जिसकी सुगंध से
फिज़ा में मस्ती छा जाती है
और जिसके दीदार से
इंसानी रूहों में
हरकत पैदा होती है,
मेरे खिलने पर भी
चांद, सूरज, सितारों ने
मुस्कान बिखेरी
धरती ने दिया आंचल
हवाओं ने चादर-
जिस आंगन में मैंने
पहली किलकारी भरी
वहां सोहर, बधावा गाए गए
थालियां बजाई गईं,
मैं अपनी कोमल पंखुड़ियों की
बेपनाह खूबसूरती पर
इठलाता, मचलता
बेखौफ बढ़ता गया
अपने आंगन में
नूर-ए-नज़र बनकर।
नियति ने समय की ड्योढ़ी पर
दस्तक दी
और मैं ज़माने के दस्तूरों में
ढलता, बढ़ता गया
मेरे कपाल पर अंकित अक्षरों को
अब कोई न कोई रोज पढ़कर सुना देता है
मुझे मेरी औकात बता देता है,
मां रोज सुबह खिला-पिला कर
मेरे मस्तक को चूमती है
और चली जाती है,
उसे पता है-
मेरा लाल बहादुर है, साहसी है
इसलिए उसे किसी अनहोनी की
चिंता नहीं सताती,
बस्ती के पीछे वर्षों से पड़े कूड़ों के ढेर
अब ऊंचे-ऊंचे पहाड़ से बन गए हैं
मैं रोज उनकी चोटियों पर चढ़ जाता हूं
और ऊंचे आसमान को छूने की
कल्पना करता हूं,
घर के पीछे बहते नालों से
जहां कोई झांकने की हिम्मत नहीं करता
मैं प्लास्टिक के टुकड़ों को
उठा लाता हूं और उन्हें
जोड़-जोड़ कर एरोप्लेन बना देता हूं,
मेरे कई साथी
पॉलीथीन की थैलियां
मुझसे भी तेज बीन लेते हैं-
लेकिन विषैले फण वाले सांप के
निकलने पर
सभी के कदम ठिठक जाते हैं-
तब मैं ही आगे आता हूं
और फुंफकारते फणधर के अहंकार को
बिना डंडे के ही चूर कर देता हूं
पेड़ की पतली डालियों पर
पलक झपकते चढ़ जाना,
तेज भागते वाहनों को
क्षण भर में दौड़ कर छू लेना,
पीठ पर अपने से ड्योढ़ा वज़न रखकर
बस्ता ढोते हम-उम्र स्कूली बच्चों से

रेस लगा कर आगे निकल जाना
मेरे बाएं हाथ का खेल है
और, जिस दिन से तमंचा भांजते
बदमाश को पत्थर से निशाना साधकर
धराशायी किया है मैंने, बस्ती वाले
अब मेरे अचूक निशाने की चर्चा करते हैं,
मेरे बापू को मुझ पर नाज़ है
लेकिन कहते हैं-
रहने दे पुत्तर,
इन चीज़ों से जिंदगी नहीं चलती
धूल उड़ाने से रोटी नहीं मिलती,
तू इतना भी बहादुर नहीं
कि साहसी बच्चों के साथ
हाथी पर चढ़ कर राजपथ पर घूमे
बहादुरी का पैमाना
पहाड़ पर चढ़ते
बच्चों के साहस को मापती है;
कूड़े के टीलों को
लांघते बच्चों के साहस को नहीं ।
खेल प्रतिस्पर्धाओं में
शूटिंग और तीरंदाज़ी के लिए ही
मेडल की रेस है
पत्थर की रेस है
पत्थर से निशानेबाजी
अभी प्रतियोगिताओं में शामिल होना शेष है
इसलिए पुत्तर इन बातों को रहने दे
तू बस दो रोटी कमाने की चिंता कर
जमाना जो करे, करने दे ।
पिता की नेक सलाह पर
मैंने बड़ी जिम्मेदारी संभाल ली है
अब मैं रोज सुबह
रेहड़ी पर बैठ कर
कॉलोनियों में जाता हूं
हर द्वार का कचरा उठाता हूं
सीढ़ियों की सफाई
सीवरों को खोलना
मैं निपुण हो गया हूं, इन कामों में
हर घर में मेरा इंतज़ार होता है
मेरे न आने पर
हाहाकार होता है,
मुझे आता देख
लोग खुश हो जाते हैं
लेकिन 'काम' के बाद
मेरा एक क्षण भी टिकना
किसी को पसंद नहीं ।
मुझसे अक्सर लोग
सहानुभूति रखते हैं
लेकिन मेरा कोई विकल्प नहीं
इसलिए सब चुप रहते हैं ।
मुझे कई आंटियां 'मां' सी लगती हैं-
जो मुझे स्कूल जाने को कहती हैं-
मैं हंसता हूं-
कभी-कभी सोचता हूं
शायद कलम चलाना
रेहड़ी चलाने से आसान होगा,
जिस दिन मेरे हाथों में
झाड़ू की जगह कलम आएगी
मैं कागज़ पर भारत का नया नक्शा उकेरूंगा
नया इतिहास लिखूंगा-
वही नक्शा जिसे मैंने देखा है
वही इतिहास जिसे मैंने सुना है
मेरी औकात धेले भर की भी नहीं
लेकिन मेरा वजूद न मिटने वाला है
मैं हर युग, हर सभ्यता में रहा हूं
कभी इस नाम से, कभी उस नाम से
मैं इंसानियत के आगे एक सवाल हूं
मैं धरती का लाल हूं
मैं धरती का लाल हूं।

संपर्क : 9868817779

❖❖❖

धूल भी एक पदार्थ है

- रणविजय राव

धूल भी एक पदार्थ है
झाड़ो-बुहारो निकल जाएगी
जा सिमटेगी कोने में
या फेंक दो बाहर
बदल जाएगी कूड़े के ढेर में ।

पछवा बयार में उड़ती धूल
पड़ जाती है आंखों में
आंख की किरकिरी बनी धूल को
हम आंख मलकर
या धोकर
कोशिश करते हैं निकालने की ।

धरती पर बहुत सी चीजें
बनी हैं धूल की
अनश्वर समझी जाने वाली चीजें भी
मिल जाती हैं एक दिन धूल में ।

हम लाख कोशिश कर लें
घर को बंद और सुरक्षित
उसे उभेद्य बनाने की
पर धूल डाल ही देती है
अपना डेरा
टी.वी. के स्क्रीन, सोफे
और टेबुल पर पड़ी किताबों पर
रोज पड़ी रहती है एक परत
धूल की ।

अपना बहुत-सा कीमती समय
हम बिता देते हैं
धूल की परत साफ करने में ।

बड़े-बड़े महापुरुषों की
चौक-चौराहे पर खड़ी
प्रतिमाओं पर भी
पड़ी रहती है धूल की एक मोटी परत
जन्म दिन और पुण्यतिथि के अवसर पर
धुलने से पूर्व ।

कई लोगों का शगल होता है
धूल उड़ाना
धूल में मिलाना
धूल चटाना
धूल फांकना
धूल झोंकना आदि-आदि ।

कई बार जब हम
हार जाते हैं
किसी सामर्थ्यवान से
तो सरक लेते हैं हल्के से
धूल झाड़ते हुए ।

दरअसल
हमेशा उड़ती हुई दिखती धूल
सिर्फ धूल नहीं होती
धूल दबे-कुचले लोगों की
कराह होती है
विशेषकर तब
जब असफल हो जाते हैं
अन्याय और अन्यायी को
धूल चटाने में ।

❖❖❖

संपर्क : 09891627796

कैसे कहूँ मन करता है!

- सुधीर सिंह 'सुधाकर'

मन करता है मेरा अपना
पंछी बन अम्बर में उड़ जाऊँ ।
मम्मी-पापा के मन मंन्दिर में,
जमकर मैं अपना आसन जमाऊँ ।।

मन मेरा बस मतवाला ना हो,
मन में बस मैं प्यार बसाऊँ ।
दुनिया को मैं विश्वास दिलाऊँ
भीड़ भाड़ में कभी ना खो जाऊँ ।।

कभी मेरा मन मैला ना हो,
मन का विश्वास कम न हो ।
मन से मैं मन की भाषा समझूँ,
आहत मन को पुलकित कर जाऊँ ।।

मन ने मन को जब समझ लिया,
जीवन रहस्य तक सब जान लिया ।
उल्लास भरे मन को मैं समझूँ,
मन से ही ना मैं मन का परिहास कराऊँ ।।

उड़ते मन को मेरे एक डोर मिला,
दूंनिया के संग मन को ठोर मिला ।
मन को एक नया पतवार मिला,
मन को मैं नित्य सैर कराऊँ ।।

समझ न पाया मैं अपने मन को,
मन ने मुझको बहुत तरसाया ।
मन को मैं जितना आज समझ सका,
आहत मन को कैसे समझाऊँ ।।

मन की चाहत मैं ढूँढ़ ना पाया,
खुले मन से मैं क्या इजहार करूँ ।
उड़ते मन को अब मैं कैसे रोकूँ,
टूटें मन से दिल कैसे बहलाऊँ ।।

❖❖❖

संपर्क : 9953479583

जानवर

- विजय कुमार

अक्सर शहर के जंगलों में य
मुझे जानवर नजर आतें है !
इंसान की शक्ल में ,
घूमते हुए य
शिकार को ढूंढते हुए य
और झपटते हुए..
फिर नोचते हुए..
और खाते हुए !

और फिर
एक और शिकार के तलाश में ,
भटकते हुए..!

और क्या कहूँ ,
जो जंगल के जानवर है य
वो परेशान है !
हैरान है !!
इंसान की भूख को देखकर !!!

मुझसे कह रहे थे..
तुम इंसानों से तो हम जानवर अच्छे !!!

उन जानवरों के सामने य
मैं निशब्द था,

क्योंकि य
मैं भी एक इंसान था !!!

संपर्क : 09849746500

खुद को संभाल पहले

- प्राण नाथ प्रभाकर 'प्राण'

निकला मरीजे-इश्क का करने को तू इलाज
बीमारे-इश्क का भला, हुआ कभी इलाज!

उसको प्रभु पे छोड़, करने प्रभु इलाज
खुद को संभाल पहले, कि हो सके इलाज!

हो न कुछ हकीम के नुस्खों से फायदा
कहता तबीब है, कि मर्ज़ है ये ला-इलाज !

हाफिज़ खुदा ही अब तो है बीमारे-इश्क का
बंदिश खुदा की है फ़क़त, इस दर्द का इलाज!

जतलाना अपना फर्ज है, लेकिन ऐ दोस्तों
कहना गर ना माने कोई, तो उसकां क्या इलाज!

'प्राण' वस्ले-रब की उम्मीद दिल में है
देखें हो कब विसाल, मेरा है वही इलाज

संपर्क : पत्रकार परिसर, फ्लैट नं॰ 111,
सेक्टर-5, वसुन्धरा, गाजियाबाद-201012

इन्सान तो बनो

- डॉ० उमाशंकर ''राही''

आदमी तो बन गये इंसान तो बनो ।
मन में धारो धौर्यता मत व्यर्थ में तनो ।।

हरा भरा वृक्ष कभी बोलता नहीं ।
अपने गुणों को कभी तोलता नहीं ।।
पर सेवा में सदैव खड़ा रहता ।
शीत गरमी और बरसात सहता ।।
कष्टों को भी सहकर फल देता है मनों ।
आदमी तो बन गये इंसान तो बनो ।।

सूखे पात हवा पाके बड़बड़ाते हैं ।
इसीलिए आँधियों में लड़खड़ाते हैं ।।
धरती की ओर देखो भार कितना सहे ।
फिर भी वह किसी से कुछ न कहे ।।
धरती से सीखो धैर्य प्यारे स्वजनों ।
आदमी तो बन गये इंसान तो बनो ।।
छोटी-छोटी बातों पै न क्रोध को करो ।
शैतानों से नहीं भगवान से डरो ।।
जो भी करना है उसे जानकर करो ।
सेवा को सदैव धर्म मानकर करो ।।
बनना है कमल तो कीचड़ में सनो ।
आदमी तो बन गये इंसान तो बनो ।।
सीता सावित्री का मन क्लान्त हुआ है ।
दामिनी का तेज भी तो शान्त हुआ है ।।
करुणा दया का भाव कहाँ खो गया ।
लालच का भाव क्यों सवार हो गया ।।
कोयला न बनों मेरे प्यारे रत्नों ।
आदमी तो बन गये इंसान तो बनो ।।

❖❖❖

संपर्क : 09412501633

मैं तुम्हारी ही कृपा से...

- शिवकुमार बिलगरामी

मैं तुम्हारी ही कृपा से नित्य निर्मल हो रहा हूँ
मैं तुम्हारा नेह पाकर और उज्ज्वल हो रहा हूँ

भाव सुंदर और कोमल
जग रहे हैं इस हृदय में
सद्विचारों के पखेरू
उड़ रहे हैं मन-निलय में

मैं तुम्हारी इस दया से भाव विह्वल हो रहा हूँ
मैं तुम्हारा नेह पाकर....

प्रेम की इक दृष्टि से मैं
तृप्त होता जा रहा हूँ
एक पल के साथ से मैं
सुख युगों का पा रहा हूँ

मैं तुम्हारी पाद-रज से नित्य निश्छल हो रहा हूँ
मैं तुम्हारा नेह पाकर....

भेद के जो बंध थे वो
टूटते ही जा रहे हैं
और भी अवरोध थे जो
वो किनारा पा रहे हैं

मैं नदी सा बह रहा हूँ नित्य कल-कल हो रहा हूँ
मैं तुम्हारा नेह पाकर....

शक्तियाँ कितनी अलौकिक
जग रही तन में निरंतर
पुष्प कितने खिल रहे हैं
दिव्य चेतन मन-पटल पर

मैं निरंतर 'ऊँ' का स्वर मंत्र का बल हो रहा हूँ
मैं तुम्हारा नेह पाकर....

❖❖❖

सृजन-स्मरण

विजयदेव नारायण साही

(जन्म : 7 अक्टूबर, 1924 ; निधन : 5 नवम्बर, 1982)

गला काट देने पर
मुर्गा तड़पता है
साफ लगता है ?
अभी कुछ होगा।

थोड़ी देर में
मुर्गा मर जाता है।

– विजयदेव नारायण साही

सृजन-स्मरण

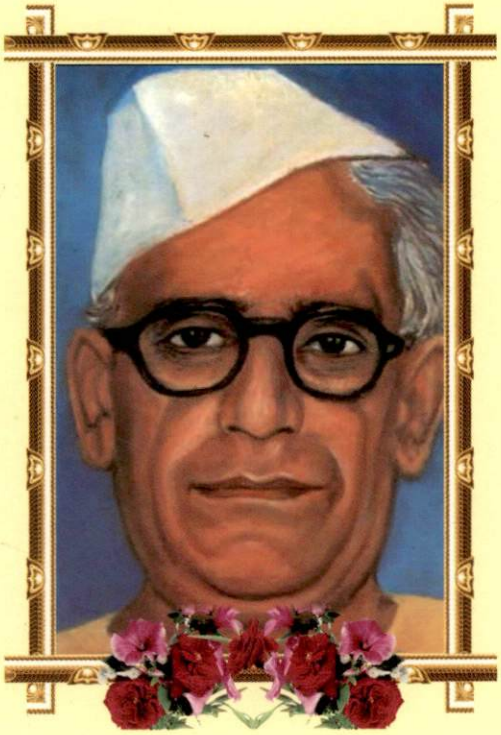

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

(जन्म : 8 दिसम्बर, 1897 ; निधन : 29 अप्रैल, 1960)

मैंने कब सजीवता फूँकी जग के कठिन शैल पाहन में
मैं कर पाया प्राणस्फुरण कब अपने अभिव्यंजन वाहन में
मुझे कब मिले सुंदर मुक्ता भावार्णव के अवगाहन में
यदा–कदा हैं मिले मुझे तो तुम जैसे कुछ अतिथि लजीले!
यों ही बन–बनकर बिगड़े हैं मेरे मधुमय स्वप्न रंगीले।

– बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'